श्रीसूक्तम्

श्रीनिग्रहाचार्य कृत शङ्करभाष्य
एवं
श्रीप्रसाद-हिन्दीटीका सहित

लेखक
श्रीभागवतानंद गुरु

संपादक
अरुण कुमार पाण्डेय

आर्यावर्त सनातन वाहिनी 'धर्मराज' के सौजन्य से प्रकाशित
NOTION PRESS

NOTION PRESS
India. Singapore. Malaysia.
ISBN xxx-x-xxxxx-xx-x

First Published - 2020
Third Edition - 2021

This book has been published with all reasonable efforts taken to make the material error-free after the consent of the author. No part of this book shall be used, reproduced in any manner whatsoever without written permission from the author, except in the case of brief quotations embodied in critical articles and reviews. The Author of this book is solely responsible and liable for its content including but not limited to the views, representations, descriptions, statements, information, opinions and references [“Content”]. The Content of this book shall not constitute or be construed or deemed to reflect the opinion or expression of the Publisher or Editor. Neither the Publisher nor Editor endorse or approve the Content of this book or guarantee the reliability, accuracy or completeness of the Content published herein and do not make any representations or warranties of any kind, express or implied, including but not limited to the implied warranties of merchantability, fitness for a particular purpose. The Publisher and Editor shall not be liable whatsoever for any errors, omissions, whether such errors or omissions result from negligence, accident, or any other cause or claims for loss or damages of any kind, including without limitation, indirect or consequential loss or damage arising out of use, inability to use, or about the reliability, accuracy or sufficiency of the information contained in this book.

All Rights Reserved - Author

श्रीसूक्तम्

श्रीनिग्रहाचार्य कृत शङ्करभाष्य
एवं
श्रीप्रसाद-हिन्दीटीका सहित

लेखक
श्रीभागवतानंद गुरु

संपादक
अरुण कुमार पाण्डेय

आर्यावर्त सनातन वाहिनी 'धर्मराज' के सौजन्य से प्रकाशित
NOTION PRESS

धर्मसंरक्षणार्थायाधर्मसंहारहेतवे।
निग्रहाणाञ्च धर्माज्ञा लोके लोके प्रवर्द्धताम्॥

श्रीनिग्रहाचार्य (श्रीभागवतानंद गुरु)

भूमिका

सुविदित है कि अलौकिक शक्तियों से भरपूर यह श्रीसूक्त लघुकाय होते हुए भी गागर में सागर समेटे हुए अनेक रहस्यों से परिपूर्ण प्राणिमात्र की सर्वविधकामना की परिपूर्ति में समर्थ ईश्वरीय परा वाक् है। मात्र १५ ऋचाओं वाले इस सूक्त में जो शक्तियाँ निहित हैं वे अन्यत्र सर्वथा अप्राप्य हैं। देवता भी इसके रहस्यों को पूर्णतः यथावत् जानने में असमर्थ हैं।

'श्री' धन की अधिष्ठात्री देवी हैं अतः वर्तमान में धनमात्र को अपना परम पुरुषार्थ मानने वाले लोग भी धन की कामना से इस सूक्त के रहस्यों को न जानते हुए भी इसका पाठ करते रहते हैं। दुर्भाग्यवश, अज्ञान की विक्षेप शक्ति से विक्षिप्त इस लोक में इस सूक्त की केवल धनप्रदायिका शक्ति का ही लोगों को भान है, इसके अन्य कल्याणकारी रहस्यों तथा शक्तियों से सम्पूर्ण लोक अनभिज्ञ है।

यद्यपि 'श्री विद्यारण्य स्वामी', 'श्री रंगरामानुज मुनि' आदि अनेक ऋषितुल्य भाष्यकारों ने इस लघुकाय सूक्त के रहस्यों को लोक में प्रकाशित करने के लिये इस पर भाष्य की रचना की है, तथापि उन सभी ने मात्र लोकवृत्ति अथवा किञ्चित् मात्रा में ही आगमोक्त अर्थों का आश्रय लिया एवं लौकिक व्युत्पत्ति की दृष्टि से ही इसके अर्थों को प्रकाशित करने का लोकोपकारी एवं श्लाघनीय उपक्रम किया। श्रीसूक्त की अद्वितीय अर्थशक्ति को पूर्णतया प्रकाशित कर पाना देवों के लिये भी दुष्कर है।

यह सभी जानते हैं कि श्रीसूक्त से अर्थकामना की पूर्ति होती है परन्तु यह बहुत कम लोग यह जानते हैं कि इससे सर्वविध पुरुषार्थों की सिद्धि सम्भव है। प्रस्तुत श्रीसूक्त-शङ्करभाष्य ग्रन्थ की विशेषता यही है कि विलुप्तप्राय निग्रहागमों के उपदेष्टा एवं निग्रह सम्प्रदाय के अन्तिम आचार्य के रूप में महाविद्याओं के द्वारा चयनित पूज्यपाद श्रीनिग्रहाचार्य (श्रीभागवतानंद गुरु) पर सिद्धयोगिनी देवी पद्मिनी के द्वारा किये गये अनुग्रह के फलस्वरूप देवी द्वारा प्रदत्त देवों के लिए भी दुर्लभ अर्थों को इसमें प्रकाशित किया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में लोक सामान्य में प्रचलित लौकिक अर्थों को प्रकाशित करने के लिए लोकवृत्ति, दिव्य अर्थों को प्रकाशित करने के लिए दिव्य-वृत्ति, दिव्यवृत्ति में व्याख्यात पदों के कूटों की व्याख्या हेतु कूटवृत्ति, मन्त्र के तत्त्वों को प्रदर्शित करने के लिए तत्त्ववृत्ति तथा यह सूक्त जिस नृसिंह मन्त्र से संपुटित होकर रक्षित रहता है उसकी व्याख्या के लिए नृसिंहवृत्ति का आश्रय लिया गया है।

इस ग्रन्थ के संपादन हेतु ग्रन्थकार श्रीभागवतानंद गुरु जी ने मेरा चयन किया यह मैं अपना परम सौभाग्य ही मानता हूँ। वस्तुतः मेरी ऐसे विषयों में अल्पमात्र भी गति नहीं है, केवल व्याकरण और तर्क का एक सामान्य अध्येता मैं, जब इस ग्रन्थ के व्याकरणात्मक संपादन हेतु आदिष्ट हुआ तब तक मुझे इस सूक्त के लोकसामान्य अर्थ का भी पूर्णतः ज्ञान नहीं था। परन्तु इस ग्रन्थ के अध्ययन से मुझे यह ज्ञात हुआ कि ऐसी व्याख्या लिखना किसी सामान्य लौकिक व्यक्ति के द्वारा

संभव ही नहीं है। इसके विषय प्रतिपादन को देखकर लेखक पर दैवीय कृपा प्रत्यक्ष अनुभूत की जा सकती है। इस ग्रन्थ के संपादन की प्रक्रिया में निग्रहाचार्य श्रीभागवतानंद गुरु जी देवी कृपा से प्राप्त अर्थ को प्रतिदिन लिख कर मेरे पास भेज देते थे। मेरा सौभाग्य था कि मुझे इसके गूढ़ और सुदुर्लभ विषय को प्रतिदिन पढ़ने का अवसर मिलता, संगणकीय प्रमादवश लेखक के द्वारा जो कुछ दोष रह जाता था उसे परिमार्जित कर देना ही मेरा कार्य था।

आचार्य ऋषिकुमार तिवारी जी के यह पूछने पर कि 'श्रीसूक्त में चार श्रीपुत्रों का रहस्य क्या है', निग्रहाचार्य जी ने सम्पूर्ण सूक्त पर ही इस शङ्करभाष्य का प्रणयन कर दिया। अन्त में मैं केवल इतना ही कहना चाहूँगा कि मैं इस ग्रन्थ का संपादक स्वयं को नहीं मानता, इस दैवीय ज्ञान से परिपूर्ण ग्रन्थ का प्रथम पाठक ही स्वयं को मानता हूँ। इस ग्रन्थ में जो भी विषय प्रतिपादित हैं वे देवी की कृपा से प्राप्त और निग्रहाचार्य श्रीभागवतानंद जी के द्वारा उन्हीं की शब्दावली में निबद्ध है, यद्यपि यह ध्यान रखा गया है कि ग्रन्थ में भाषा से सम्बन्धित कोई दोष न रहे तथापि मानव स्वभाव से यदि कोई दोष समीक्षक विद्वज्जनों को दिखे तो उसके लिये यह अज्ञ क्षमाप्रार्थी है।

धन्यवाद

भवदीय

अरुण कुमार पाण्डेय

*_*_*

॥अथ प्रसङ्गाधिकारः ॥

शिष्या ऊचुः

श्रीसूक्तस्य महानर्थं श्रीदेव्याश्चरितं महत्।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामः कृपास्ति यदि ते गुरो ॥०१॥

शिष्यों ने कहा - हे गुरुदेव ! श्रीसूक्त का जो महान् अर्थ है, एवं लक्ष्मी देवी का जो महान् चरित्र है, यदि आपकी हमपर कृपा हो तो उन सबों को हम सुनना चाहते हैं।

निग्रह उवाच

शङ्कराख्यञ्च श्रीभाष्यं मया यल्लिखितं पुरा।
पद्मिनीसाधनाकाले यन्मे गुरुमुखाच्छ्रुतम् ॥०२॥
यद्दिव्यार्थश्च कूटार्थो यच्च तत्त्वार्थवर्णनम्।
यस्तान्त्रिकप्रयोगार्थस्तत्सर्वं लिखितं मया ॥०३॥
श्रावणे प्रतिरात्रं यो मया मन्त्रः सुचिन्तितः।
दशाक्षरः पद्मजायास्तत्प्रसादाद्वदाम्यहम् ॥०४॥

निग्रहाचार्य ने कहा - मेरे द्वारा पूर्वकाल में श्रीसूक्त का शङ्कर नामक यह भाष्य लिखा गया है जो गुरुमुख से श्रुत ज्ञान के आधार पर एवं पद्मिनी देवी की साधनाकाल में विरचित है। जो इसका दिव्य अर्थ है, जो कूट अर्थ है और जो तत्वार्थ का वर्णन है, जो तान्त्रिक प्रयोगों में वर्णित है, वह सब मेरे द्वारा लिखा गया है। श्रावण में प्रत्येक रात्रि को मेरे द्वारा पद्मिनी देवी का जो दशाक्षर मन्त्र जपा गया था, उसकी कृपा से कहता हूँ।

शास्त्रेषु मोक्षदं शास्त्रं यथा श्रेष्ठं द्विजोत्तमाः।
नराणां वाडवः श्रेष्ठो धातूनां हाटको यथा ॥०५॥
पेयानाञ्च पयः श्रेष्ठमिन्द्रियाणां यथा मनः।
तथा सूक्तेषु सर्वेषु श्रीसूक्तं प्रोच्यते बुधैः ॥०६॥

हे ब्राह्मणों ! जिस प्रकार सभी शास्त्रों में मोक्षशास्त्र श्रेष्ठ है, मनुष्यों में ब्राह्मण एवं धातुओं में स्वर्ण श्रेष्ठ है, जिस प्रकार पेय वस्तुओं में दूध एवं इन्द्रियों में मन श्रेष्ठ है, वैसे ही सभी सूक्तों में श्रीसूक्त श्रेष्ठ है, ऐसा बुद्धिमानों के द्वारा कहा जाता है।

शङ्करोऽस्ति गुरुस्त्राता शङ्करोऽस्ति पिता मम।
तस्मात्प्रवर्तितं भाष्यं शङ्करं लोकशङ्करम् ॥०७॥
शिवभक्तिविहीनाश्च विष्णुधर्मबहिष्कृताः।
देवताभेदद्रष्टारस्सर्वे नात्राधिकारिणः ॥०८॥
यच्चागमपुराणेषु यच्च वेदेषु वर्णितम्।
पूर्वाचार्यमतं यच्च सद्बुद्ध्यालोडितं मया ॥०९॥

मेरे गुरु का नाम शङ्कर (शङ्कराचार्यपरम्परा) है, मेरे रक्षक शङ्कर (महादेव) हैं। मेरे पिता भी शङ्कर (आचार्य शङ्कर) ही हैं, अतः मैंने लोकों का कल्याण करने वाले इस शङ्करभाष्य का प्रवर्तन किया है। जो लोग शिवभक्ति से हीन हैं, जिनका वैष्णवधर्म में अधिकार नहीं है, जो देवताओं में भेदबुद्धि रखते हैं, ऐसे लोग इस भाष्य के अधिकारी नहीं हैं। तन्त्रशास्त्र, पुराण एवं वेदों में जैसा अर्थ बताया गया है, पूर्वाचार्यों ने जिस अर्थ को सम्मति दी है, उन सबका सद्बुद्धि से मन्थन करके मैंने इसकी रचना की है।

श्रीदेव्यृषिरिति ख्याता ख्यापको विखना मुनिः।
वाग्देव्या सङ्गृहीतञ्च स्वभर्तुश्चतुराननात् ॥१०॥
ब्रह्मणो नारदः प्राप्य मलयाचलपर्वते।
ददावृषीनङ्गिरादीन्कपिलं सांख्यमेधसम् ॥११॥

इसकी ऋषि श्रीदेवी हैं, उसके बाद ब्रह्मा इसके विस्तारक हुए जिन्हें विखना मुनि भी कहते हैं। सरस्वती ने अपने पति चतुर्मुख ब्रह्मा से इस ज्ञान को ग्रहण किया था। ब्रह्मा से नारद ने प्राप्त किया एवं मलयाचल पर्वत पर सांख्ययोग का ज्ञान रखने वाले कपिल को तथा अङ्गिरा आदि ऋषियों को प्रदान किया।

ततो देवसभामध्येऽङ्गिरा प्राह हुताशनम्।
कात्यायनोऽनलात्तत्र प्राप्यैतद्गौतमं ददौ ॥१२॥
गौतमाच्च भरद्वाजस्तस्माद्गर्गोऽथ लब्धवान्।
गर्गाच्च स्मृतिकर्तारौ देवलासितसंज्ञकौ ॥१३॥
जैगीषव्यस्ततस्ताभ्यां तस्मात्कव्यभुजस्तथा।
पितृकन्या ततोऽच्छोदा काली सत्यवती स्मृता ॥१४॥

फिर देवताओं की सभा में अङ्गिरा ने इसे अग्निदेव को बताया तथा अग्निदेव से कात्यायन ने प्राप्त करके इसे गौतम को दिया। गौतम ने भरद्वाज को और उनसे गर्गमुनि ने प्राप्त किया। गर्ग ने स्मृतिकार असित एवं देवल को दिया तथा उनसे जैगीषव्य ने प्राप्त किया। जैगीषव्य से कव्यभोजी पितरों ने प्राप्त किया। पितरों से उनकी पुत्री अच्छोदा ने प्राप्त किया जिसे काली एवं सत्यवती भी कहते हैं।

ददौ काली सुतं व्यासं सर्वशास्त्रार्थपारगम्।
व्यासाच्छुकस्ततस्तस्मात् स्वर्भानुश्च प्रजापतिः ॥१५॥
कियत्कालान्तरे मैत्रः प्राह भार्यामरुन्धतीम्।
निजाश्रमस्थितोऽत्रिस्तामनसूयामनिन्दिताम् ॥१६॥

सत्यवती ने सभी शास्त्रों के अर्थ को जानने वाले अपने पुत्र व्यास को दिया और व्यास से शुकदेव ने प्राप्त किया। शुकदेव से प्रजापति स्वर्भानु ने इस ज्ञान को प्राप्त किया। कुछ काल के बाद मित्रावरुण के पुत्र वशिष्ठ ने अपनी पत्नी अरुन्धती से कहा एवं अपने आश्रम में स्थित होकर अत्रि ने अनिंद्य व्यवहार वाली उस अनसूया से कहा।

पार्वती हिमवद्देशे ज्ञानमात्रेयशेखरात्।
प्राप्य भक्त्या समायुक्ता सा श्रियं सम्यगार्चयत् ॥१७॥
लक्ष्मीनारायणाकारा भवतीह मनःस्थितिः।
श्रीसूक्तस्य च दिव्यार्थं मच्चित्ते पद्मिनी ददौ ॥१८॥

अपने मस्तक पर चन्द्रमा को धारण करने वाले भगवान् शिव से हिमालय पर्वत पर स्थित देवी पार्वती ने इस ज्ञान को प्राप्त करके भक्तिपूर्वक एवं अच्छी प्रकार से देवी लक्ष्मी की पूजा की थी। इसके प्रभाव से मन की स्थिति लक्ष्मी-नारायण के चिन्तन से युक्त हो जाती है। मेरे चित्त में श्रीसूक्त का दिव्यार्थ देवी पद्मिनी ने दिया था।

मूको भवति वागीशो निर्धनो धनवान् भवेत्।
श्रीदेव्याः सम्प्रसादेन किमस्ति भुवि दुर्लभम् ॥१९॥

विष्णुनिष्कुटसम्राज्ञी इन्द्रागस्त्यसुपूजिता।
भार्गवी सिन्धुसम्भूता सर्वैश्वर्यप्रदास्तु मे ॥२०॥

मूक व्यक्ति विद्वान् हो जाता है, दरिद्र भी धनवान् हो जाता है, लक्ष्मी देवी की कृपा से संसार में भला क्या दुर्लभ है ? विष्णु भगवान् के अन्तःपुर की स्वामिनी, इन्द्र एवं अगस्त्य के द्वारा पूजित, भृगु ऋषि की तपस्या से प्रसन्न होकर उनकी पुत्री बनने वाली, समुद्र से प्रकट होने वाली देवी लक्ष्मी हमें सभी प्रकार के ऐश्वर्य देने वाली हों।

॥इति प्रसङ्गाधिकारः॥

--*

॥अथार्चाधिकारः ॥

निग्रह उवाच

श्रीसूक्तस्यर्षिरेवैका श्रीरितीन्दुसहोदरा।
देवता विष्णुवनिता श्रीर्नाम सूक्तछन्दसः ॥०१॥
विनियोगं प्रकुर्वाणो लक्ष्मीनारायणार्चने।
श्रीसम्पन्नो भवेल्लोके ध्यात्वा हर्यङ्कसंस्थिताम् ॥०२॥

निग्रहाचार्य ने कहा - श्रीसूक्त की ऋषि तो एक ही है जो चन्द्रमा की सहोदरा श्री है। इसकी देवता विष्णुवनिता लक्ष्मी एवं इस सूक्त का श्री नामक छन्द ही समझना चाहिए। लक्ष्मीनारायण के पूजन में इस विनियोग को करते हुए और विष्णु के अङ्क में स्थित देवी का ध्यान करके व्यक्ति इसी लोक में श्रीसम्पन्न हो जाता है।

पद्माननना पद्मकलेवरा च पद्मानुरक्तारुणपद्मगन्धा।
बलिन्दमासंश्रितविग्रहा या ध्यायेत्सुधीस्तां भुवनैकधात्रीम् ॥०३॥

बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिए कि वह संसार का पालन करने वाली देवी का ध्यान इस प्रकार करे - वे पद्म के समान विकसित मुखमण्डल वाली हैं, उनका शरीर पद्म के समान कोमल है, वे पद्मपुष्पों के साथ क्रीड़ा कर रही हैं एवं उनके दिव्य शरीर से रक्तकमल की सुगन्ध आ रही है। उन्होंने श्रीविष्णु (के बाएं भाग) का आश्रय ले रखा है।

हिरण्यवर्णामुच्चार्यावाहयेन्माञ्च माधवम्।
ऋग्भिः क्रमेण सद्भक्त्या ततोऽग्रं पूजयेद्बुधः ॥०४॥

आसनं पाद्यमर्घ्यञ्च तुर्ययाचमनं स्मृतम्।
पञ्चम्या चोपहाराणि षठ्या स्नानं प्रकल्पयेत् ॥०५॥

'हिरण्यवर्णां' मन्त्र का उच्चारण करके लक्ष्मी एवं नारायण का आवाहन करे। फिर बुद्धिमान् क्रमानुसार ऋचाओं के द्वारा पूजन करे। (दूसरे मन्त्र से) आसन दे, (तीसरे मन्त्र से) पाद्य एवं अर्घ्य प्रदान करे। चौथी ऋचा से आचमन एवं पांचवीं से उपहार दे। छठी ऋचा से स्नान की कल्पना करे।

ततो वस्त्रैः पुरस्कृत्य दद्याच्छृङ्गारभूषणम्।
गन्धदानं ततः कृत्वा पुष्पमाल्यनिवेदनम् ॥०६॥

फिर (सातवें मन्त्र से) वस्त्र देकर (आठवें मन्त्र से) श्रृंगार आभूषण आदि प्रदान करे। (नवें मन्त्र से) गन्धदान करके (दसवें मन्त्र से) पुष्पमाला का निवेदन करना है।

दशोत्तराभ्यामाग्नेयौ तदग्रं मधुपर्ककम्।
मन्वृचा भक्ष्यभोज्यादीन्दत्वा नत्वा ततोऽग्रतः ॥०७॥
न्यूनातिरिक्तनाशाय तथा बीजौ समुच्चरेत्।
मायाख्यं कमलाख्यञ्च तारिकामनुतारिकाम् ॥०८॥

ग्यारहवें एवं बारहवें मन्त्र से धूप एवं दीप निवेदित करे। उसके बाद (तेरहवें मन्त्र से) मधुपर्क प्रदान करे। चौदहवीं ऋचा से भक्ष्य भोज्य नैवेद्य समर्पित करके (पन्द्रहवीं ऋचा से) प्रणाम करे एवं उसके पश्चात् पूजन के न्यूनातिरिक्त दोष के शमन के लिए बीजद्वय का उच्चारण करे। पहले तारिका - मायाबीज (ह्रीं) और उसके बाद अनुतारिका - कमलाबीज (श्रीं) का उच्चारण करे।

अथाम्नायान्तरं वक्ष्ये यदुक्तं वैष्णवागमे।
तारिके पूर्वमुच्चार्य लक्ष्मीनारायणं स्मरेत् ॥०९॥

अब मैं वैष्णवागम में वर्णित पूजन का दूसरा प्रकार कहता हूँ। पहले दोनों तारिकाओं (ह्रीं एवं श्रीं) का उच्चारण करके लक्ष्मीनारायण का स्मरण करे।

ऋग्भिर्वेदप्रमाणैश्चावाहनं तत्र कल्पयेत्।
चन्द्रां प्रभासां यशसा कुर्यादुक्त्वाभिवादनम् ॥१०॥
प्रपन्नभावमाश्रित्य स्मरेद्विष्णुं सनातनम्।
आपः सृजन्तु स्निग्धानीत्यृचार्घ्यपाद्यमौखिकान् ॥११॥

प्रथम चार ऋचाओं के द्वारा वहां (पूजन की मूर्ति, वेदी अथवा चित्र में) आवाहन की कल्पना करे। 'चन्द्रां प्रभासां यशसा' मन्त्र को पढ़कर अभिवादन करे। शरणागति के भाव को अपनाकर अविनाशी-सर्वव्यापी विष्णु का स्मरण करे। 'आपः सृजन्तु स्निग्धानि' के द्वारा पाद्य, अर्घ्य एवं आचमनीय आदि दे।

कारयेत्तच्छुचिस्नानमार्द्रां पुष्करिणीमृचा।
वस्त्रञ्च कर्दमेनोक्तं ग्रहैर्गन्धानुलेपनम् ॥१२॥
उपैतु मामलङ्कारं यथाविभवविस्तरम्।
कां सोऽस्म्यग्निसमायुक्तौ ततो हस्ताम्बुयोजनम् ॥१३॥

'आर्द्रां पुष्करिणीं' ऋचा को पढ़कर शुद्ध जल से स्नान कराए। 'कर्दमेन' मन्त्र से वस्त्र का निवेदन बताया गया है। ग्रहसंज्ञक (नवें मन्त्र) के द्वारा गन्ध आदि निवेदित करे। 'उपैतु माम्' से अपने सामर्थ्य के अनुसार आभूषण आदि दे। 'कां सोऽस्मि' मन्त्र से धूप एवं दीप प्रदर्शित करे और फिर हाथों को धो ले।

आदित्यवर्णे मनुना शृङ्गाराणि समर्पयेत्।
मनसः काममाकूतिं मधुपर्कनिवेदनम् ॥१४॥
पायसं मधु शाकानि शाल्यं नानाफलानि च।
क्षुत्पिपासामलां दद्यादन्त्येन मनुना नमः ॥१५॥
इमं सूक्तविधानञ्च महेन्द्रायोदितं पुरा।
स्वयं लक्ष्म्या महादेव्या निर्जराणां हितेच्छया ॥१६॥

'आदित्यवर्णे' मन्त्र से शृङ्गार चढ़ाए तथा 'मनसः काममाकूतिं' से मधुपर्क प्रदान करे। 'क्षुत्पिपासामलां' से खीर, मधु, शाक-सब्जी, चावल, विविध फल आदि का नैवेद्य दे और पन्द्रहवें मन्त्र से बारम्बार प्रणाम करे। ये सूक्तविधान पूर्वकाल में स्वयं महादेवी लक्ष्मी के द्वारा देवताओं के हित की इच्छा से इन्द्र को बताया गया था।

लक्ष्मीः कीर्तिस्तथा माया जया श्रीमूर्तयस्स्मृताः।
सैषा नारायणी देवी पूर्वेषामपि पूर्वजा ॥१७॥
तया सञ्जायते सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्।
सा कृणोति पुनः सर्वान्कल्पान्ते तु निजेच्छया ॥१८॥

लक्ष्मी, कीर्ति, माया और जया, ये चार श्रीमूर्तियाँ कही गयी हैं। ये वही नारायणी देवी हैं जो संसार के पूर्वज ब्रह्मादि की भी पूर्वजा हैं। उनके ही द्वारा यह सम्पूर्ण स्थावर जङ्गम से युक्त संसार उत्पन्न होता है तथा कल्प के अन्त में अपनी इच्छा से वे ही इसका संहार कर देती हैं।

भिन्नाभिन्ना क्वचिद्भिन्ना भिन्नाभिन्नकरी च या।
जड़चेतनयोर्मध्ये द्विधा भूत्वा समन्विता ॥१९॥

एवं श्रीक्रममज्ञात्वा योर्चयेन्माधवप्रियाम्।
दृग्बाहुभ्यां विना तस्य वारिधेस्तरणक्रिया ॥२०॥

वह (अविद्याशक्ति के कारण) ब्रह्म से भिन्न हैं तथा (विद्याशक्ति होने से) ब्रह्म से अभिन्न भी हैं। वही कभी कभी (परमाशक्ति होने से) जीव एवं ब्रह्म को (मायोपाधि के भावाभाव से) भिन्न एवं अभिन्न करने वाली वही हैं। जड़ एवं चेतन के मध्य (तारिणी एवं मोहिनी क्रियाशक्ति होने से) दो रूपों में वही व्याप्त हैं। इस प्रकार से श्रीक्रम को बिना जाने जो माधवप्रिया देवी लक्ष्मी का पूजन करता है, वह उसी प्रकार (व्यर्थ) है जैसे कि लोग नेत्र एवं भुजाओं से रहित होकर भी समुद्र को पार करने का उपक्रम करें।

॥इत्यर्चाधिकारः॥

*_*_*

॥अथ नृसिंहाधिकारः ॥

निग्रह उवाच

लक्ष्मीमन्त्रेषु पूर्णस्य नृसिंहस्य परात्मनः ।
सूक्ष्मभावान्तरे वर्णेऽधिकारोस्ति द्विजोत्तमाः ॥०१॥
लक्ष्मीनृसिंहसायुज्ये मन्त्रशक्तिर्बलीयसी ।
नृसिंहाभावमापन्ने न तथा प्रीतये श्रियः ॥०२॥

निग्रहाचार्य ने कहा - हे उत्तम ब्राह्मणों ! पूर्ण परमात्मा नृसिंह का लक्ष्मीमन्त्र (श्रीसूक्त) के वर्ण में सूक्ष्म भाव से अधिकार होता है। लक्ष्मी और नृसिंह के साथ होने पर मन्त्र की शक्ति बढ़ जाती है। नृसिंह के अभाव में वह मन्त्र लक्ष्मी को उतनी प्रसन्नता नहीं दे पाता है।

षोडशर्चस्तु श्रीसूक्ते द्वौ वर्णौ नखयोधिनः ।
सम्पुटीकृत्य सूक्तस्य प्रतिमन्त्रनियामकौ ॥०३॥
इन्दिराकाङ्क्षिणो लोके नृदेवासुरपन्नगाः ।
सूक्तमन्त्रस्य देवत्त्वं तेभ्यो रक्षति केसरी ॥०४॥

श्रीसूक्त में सोलह ऋचा हैं। प्रत्येक ऋचा को सम्पुट करके दो नृसिंह वर्ण रक्षा करते हैं। इस संसार में मनुष्य, देवता, असुर, नाग आदि सभी लक्ष्मी को पाना चाहते हैं। उनसे श्रीसूक्त के मन्त्रों की दिव्यता की रक्षा नृसिंह करते हैं।

नो चेद्रक्षेन्नृसिंहस्ताँस्तदा लोके व्यतिक्रमः ।
सर्वे यक्षेशविभवा भविष्यन्तीत्यसंशयः ॥०५॥

श्रीमितीन्द्वनुजाबीजं तथा स्तम्भजवर्णकम्।
क्ष्रौमितीह नरो ज्ञात्वा मुच्यते सर्वतो भयात् ॥०६॥

यदि नृसिंह रक्षा न करें तो संसार में अव्यवस्था हो जाएगी। (श्रीसूक्त के प्रभाव से) सभी लोग कुबेर के समान सम्पन्न हो जाएंगे, इसमें संशय नहीं है। लक्ष्मी का बीज श्रीं है और क्ष्रौं को (खम्भे से प्रकट) नृसिंह बीज कहते हैं जिसे जानकर व्यक्ति यहाँ सभी प्रकार के भय से मुक्त हो जाता है।

नृसिंहवृत्तिः सूक्तस्य त्रिषु लोकेषु दुर्लभा।
इन्द्रादयश्च स्वर्गस्थास्तेऽपि ज्ञानोत्सुकास्सदा ॥०७॥
न जानन्ति न जानन्ति न जानन्तीह निश्चितम्।
विना लक्ष्मीप्रसादेन मोहितानाञ्च का गतिः ॥०८॥
वेदेषु तन्त्रवाक्येषु पुराणेषु प्रकीर्तितः।
द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रो नृसिंहपरमात्मनः ॥०९॥
उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम्।
नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम् ॥१०॥

श्रीसूक्त की नृसिंह वृत्ति तीनों लोकों में दुर्लभ है। स्वर्ग में बैठे हुए इन्द्र आदि भी इसके ज्ञान को प्राप्त करने के लिए उत्सुक रहते हैं। वे फिर भी इसे नहीं जानते, नहीं जानते, निश्चित ही नहीं जानते हैं। लक्ष्मी की कृपा के बिना मोहित लोगों की भला क्या गति है ? वेदों में, तन्त्रवाक्यों में एवं पुराणों में बत्तीस अक्षरों वाला परमात्मा नृसिंह का मन्त्र वर्णित है। उग्र, वीर, महाविष्णु, जलते हुए तेज से युक्त, सभी ओर मुख वाले, नृसिंह, भयानक, कल्याणकारी, मृत्यु के भी मृत्यु को मैं प्रणाम करता हूँ।

या लोके लोकवृत्तिश्च पूर्वाचार्यप्रकाशिता।
या लब्धा गुरुवाक्येन तत्त्ववृत्तीति गीयते ॥११॥
भाष्येऽस्मिन् कूटवृत्तिश्च दिव्यवृत्तिसमाश्रिता।
नृसिंहस्य च या वृत्तिस्ताः सर्वा वर्णिता मया ॥१२॥
यस्या रूपं न जानन्ति ब्रह्माद्यास्त्रिदशेश्वराः।
तत्कथं मानुषो जाने मलविक्षेपरोगभाक् ॥१३॥
कृपयाचार्यतत्त्वस्य देवतानुग्रहान्वितः।
तथा पितृप्रसादेन लोकोत्तरगुणी भवेत् ॥१४॥
श्रीसूक्तस्य यदर्थस्तु विप्रा लोकेऽप्रकाशितः।
तं वक्ष्येऽहं महादिव्यं पद्मिनीकृपयान्वितः ॥१५॥

संसार में जो पूर्व के आचार्यों के द्वारा बताई गयी लोकवृत्ति है, जो तत्त्ववृत्ति के नाम से प्रसिद्ध है एवं मुझे गुरुवाक्य से प्राप्त हुई है, दिव्यवृत्ति का आश्रय लेकर कूटवृत्ति जो लिखी गयी है एवं नृसिंह की जो वृत्ति है, वह सब मेरे द्वारा इस भाष्य में लिखे गए हैं। जिसके स्वरूप को ब्रह्मा आदि बड़े बड़े देवता भी नहीं जानते हैं, उसे मल, विक्षेप एवं रोगों से पीडित मैं मनुष्य भला कैसे जानूंगा ? किन्तु आचार्यजनों की कृपा, देवताओं के अनुग्रह एवं पिता की प्रसन्नता से व्यक्ति अलौकिक गुण से युक्त हो जाता है (ज्ञान को प्राप्त कर लेता है)। हे ब्राह्मणों ! श्रीसूक्त का जो महान् एवं दिव्य अर्थ अभी तक संसार में अप्रकाशित है, उसे मैं पद्मिनी देवी की कृपा से युक्त होकर कह रहा हूँ।

॥ इति नृसिंहाधिकारः ॥

--*

॥अथ हिरण्याधिकारः ॥

(ॐ) हिरं॑ण्यवर्णां॑ हरिं॑णीं सुवर्णरज॒तस्रं॑जाम्।
च॒न्द्रां हि॒रण्मं॑यीं ल॒क्ष्मीं जातं॑वेदो म॒ आव॑ह ॥ १॥

शङ्करभाष्यम्

लोकवृत्तिमत्राह

लोकानां हितसम्पादने रता रम्यमाणा सुवर्णसमप्रभयान्विता हिरण्यवर्णा। जनानां भौवादिकतापोपहर्त्री दारिद्र्यक्लेशहरणनिमित्ता हरिणी। स्वर्णप्रभान्वितैरथवा रौप्यखचितैराभरणैर्वसनैर्माल्यादिभिर्या सज्जिता सा सुवर्णरजतस्रजा। चन्दति दीप्यतेऽथवाह्लादयति स्वभक्तानिति चन्द्रा। द्रविणानां निष्ठा हिरण्येषु प्रतिष्ठिता तैः समलङ्कृता पूर्णमयी वा हिरण्मयी। नृदेवासुरपन्नगयक्षादिभिर्या लक्षीकृताकाङ्क्षिता शुभलक्षणैश्चिह्नैरलङ्कृता लक्षं मीयते यया सा लक्ष्मी। स्वायम्भुवमथवा स्वजातं ज्ञानैश्वर्यमस्ति प्रसिद्धं यस्य स जातवेदा। एवं प्रकृतियुतं ब्रह्म सन्निधापय।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - संसार के हित में तत्पर एवं उसमें रमण करने वाली, सोने के समान प्रभा से युक्त होने से हिरण्यवर्णा है। लोगों के सांसारिक तापों का संहार करने वाली, दरिद्रता के कष्ट को हरण करने वाली हरिणी है। सोने की प्रभा से युक्त अथवा चांदी से भरे हुए आभूषण, वस्त्र एवं माला आदि से जो सज्जित हो, वह सुवर्णरजतस्रजा है। अपने भक्तों का चन्दन - दीपन-आह्लादन (प्रसन्न) करने वाली चन्द्रा है। धन में गण्य तत्वों की निष्ठा सुवर्ण-समूहों में प्रतिष्ठित होती है, उनके द्वारा परिपूर्ण या सुशोभित हिरण्मयी है।

मनुष्य, देवता, असुर, नाग, यक्ष आदि के द्वारा जो लक्षित एवं आकांक्षित हो, शुभ लक्षणों के चिह्नों से भरी हुई, जिसके द्वारा लक्ष्यभेदन अथवा लाखों का संहार किया जाता है, वह लक्ष्मी है। अपने आप उत्पन्न अथवा अपने माध्यम ही उत्पन्न ज्ञान एवं ऐश्वर्य जिसमें प्रसिद्ध है, वह जातवेदा है। इस प्रकार से प्रकृति से युक्त ब्रह्म का आवाहन या सन्निधान करे।

दिव्यवृत्तिमत्राह

कथं हिरण्या हिरण्यवर्णा वा ? हि शब्दस्य हननस्यार्थः। सूर्याचन्द्रमसोर्मध्ये स्थिता सुषुम्नाभावेनावच्छिन्नधारया भ्रमरीवन्निनादयन्निमिषोन्मेषविक्षेपादेव रणे शत्रूञ्जहाति तस्माद्धिरण्या। मूलाधारचक्रादुत्थितानाहते द्वादशारे प्रविश्य कोटिसूर्येन्दुसमप्रभा तद्वद्दिव्यवर्णा भवति तस्माद्वर्णा। मूलाधारतोऽनिलवेगप्रशस्तवीर्या परापश्यन्तीमध्यमादीनतिक्रम्य वैखरी भूत्वाष्टस्थानवासिनां वर्णानाञ्जननी गौरिव शब्दपयस्विनी तस्माद्धिरण्यवर्णेति दिव्यप्राजापत्यमतमनेन वर्तुलमुक्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमो योजयित्वा शब्दब्रह्ममयीं योगिनो जपन्ति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - किस प्रकार से हिरण्या अथवा हिरण्यवर्णा है ? 'हि' शब्द से हनन का अर्थ है। सूर्य एवं चन्द्रमा के बीच में सुषुम्ना भाव से भ्रमरी के समान बिना खण्डित हुए ध्वनि करती हुई पलक झपने के अंतराल में ही युद्ध में शत्रुओं का संहार कर देती है, इसीलिए हिरण्या है। मूलाधार चक्र से उठकर द्वादशार अनाहतचक्र में प्रवेश करके करोड़ों सूर्य तथा चन्द्रमा के समान प्रकाश से युक्त एवं वैसी ही दिव्यरूप वाली होती है, इसीलिए वर्णा है। मूलाधार से वायु के समान तीव्र वेग से निकल कर परा, पश्यन्ती, मध्यमा आदि रूपों को लांघकर वैखरी बनकर अष्टचक्रस्थानों (स्वस्तिकावरण को

मिलाकर) में रहने वाले शब्दवर्णों को उत्पन्न करने वाली है, गौ के समान शब्दरूपी दुग्ध को देती है इसीलिए हिरण्यवर्णा है, ऐसा दिव्य प्राजापत्य मत है। इस मत के अनुसार पहले वर्तुल (ॐ) बोलकर फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः जोडकर (ॐ हिरण्यवर्णायै नमः) शब्दब्रह्ममयी श्रीदेवी को योगीजन जपते हैं।

कथं हरिणी ? हरिणी मृगीवच्चञ्चला सा योगिनां चित्तमतिक्रम्य दूरं याति। हृ बन्धनार्थे, योगिभिर्भक्तिपाशे बद्धा हृदयस्थापिता हरिणी। ध्यात्वैवं रूपमष्टषष्टिसहस्रयोगिनो सिद्धमोक्षा बभूवूस्तस्माद्धरिणी। निवृत्तिरूपे हरिणचर्मसंस्थिता तेनावृत्तकलेवरा हरिणीसदृशव्यस्तनेत्रा हरिणा विष्णुनाश्लिष्टकटिवती हरिणी। हरिं या भुङ्क्ते हरिणा भुक्ता च हरिणीति दिव्यवैष्णवमतमनेन वर्तुलमुक्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमो योजयित्वा सज्जनपापहर्त्रीं योगिनो जपन्ति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - किस प्रकार से हरिणी है ? मृगी 'हरिणी' के समान चञ्चलता वाली वह योगियों के चित्त को लांघकर दूर चली जाती है। बन्धन के अर्थ में 'हृ' है। योगियों के भक्तिरूपी पाश में बंधकर हृदय में स्थापित होने से हरिणी है। इसी रूप का ध्यान करके अड़सठ हज़ार योगी मोक्ष को प्राप्त कर गए थे इसीलिए हरिणी है। निवृत्तिप्रधान स्वरूप में मृगचर्म को ओढकर मृगचर्म के ऊपर बैठी हुई, हरि-विष्णु के द्वारा कमर के पास आलिङ्गित की गयी हरिणी है। जो हरि का उपभोग करती है एवं हरि के द्वारा जिसका उपभोग होता है, वह हरिणी है, ऐसा दिव्य वैष्णव मत है। इस मत के अनुसार पहले वर्तुल (ॐ) बोलकर फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः जोडकर (ॐ हरिण्यै नमः) सज्जनों के पाप का हरण करने वाली को योगीजन जपते हैं।

कथं सुवर्णस्रजा रजतस्रजा वा ? बद्धमुक्तस्थावरजङ्गमनानात्वभेदेन मणिमाल्यमिव लोकान् करोतीति स्रजा। सुवर्णवर्णपद्मधारिणी योगिनां सुवर्णम्भूतिं सिद्धिं वा ददात्यथवा सुवर्णं दिव्यदेहधारिणं विष्णुं भर्तारं विचिन्वती शोभनानां वर्णानां विश्वं सृजति तस्मात् सुवर्णस्रजैतद्दिव्यवैश्रवणमतमनेन वर्तुलमुक्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमः प्रयुज्य जप्त्वा वैश्रवणो यक्षाधिपो बभूव। जगत्स्रष्टारो यस्यास्तत्त्वविग्रहस्य माल्यवदिव भासन्ते, रजतङ्गजदन्तं या स्रगिव धत्ते सा रजतस्रजैतद्दिव्यरौद्रमतमनेन वर्तुलमुक्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमः प्रयुज्य जप्त्वा रुद्रो रजतस्रग्गिरेर्कैलासस्याधिपो बभूवैवमभीष्टभूतिदात्रीं योगिनो जपन्ति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - किस प्रकार से सुवर्णस्रजा अथवा रजतस्रजा है ? बद्ध, मुक्त, स्थावर, जंगम आदि विभिन्न भेदों से मणि की माला के समान लोकों की रचना करती है, इसीलिए स्रजा है। सुनहले कमलों को धारण करती है तथा योगियों को सुवर्ण अथवा सिद्धि देती है, सुन्दर वर्ण वाले दिव्यदेहधारी विष्णु को पतिरूप से चुनते हुए सुन्दर वर्णों वाले संसार का सृजन करती है, इसीलिए सुवर्णरजतस्रजा है, ऐसा दिव्य वैश्रवण मत है। इस मत के अनुसार पहले वर्तुल (ॐ) बोलकर फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः जोड-कर (ॐ सुवर्णस्रजे नमः) विश्रवा के पुत्र (कुबेर) यक्षों के स्वामी बन गए थे।

संसार का सृजन करने वाले (धाता, प्रजापति, मनु आदि) जिसके तात्त्विक विग्रह में माला के समान भासित होते हैं, रजत अर्थात् चांदी अथवा हाथी के दांत से बनी माला को जो धारण करती है, वह रजतस्रजा है, ऐसा दिव्य रौद्र मत है। इस मत के अनुसार पहले वर्तुल (ॐ) बोलकर फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः जोडकर (ॐ रजतस्रजे नमः) रुद्र रजताद्रि कैलास के

स्वामी हो गए थे, इस प्रकार से अभीष्ट सिद्धि को देने वाली श्रीदेवी को योगी-जन जपते हैं।

कथञ्चन्द्रा ? योगिनामन्तरात्मनि स्पन्दानन्दलक्षणयुता चङ्क्रमणङ्करोति, भक्तचित्तं चन्द्रवच्छीतलमार्द्रञ्च करोत्यन्तरायद्रवणङ्करोतीति चन्द्रैतद्दिव्यवाशिष्ठमतमनेन वर्तुलमुक्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमो योजयित्वा वशिष्ठो योगपतिर्बभूवैवमानन्दकर्त्रीं योगिनो जपन्ति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - किस प्रकार से चन्द्रा है ? योगियों की अंतरात्मा में स्पन्दित आनन्द के लक्षण से युक्त होकर बारम्बार संचार करने वाली, भक्तों के चित्त को चन्द्रमा के समान शीतल एवं आर्द्र करने वाली, योग के विघ्नों का नाश करती है, वह चन्द्रा है, ऐसा दिव्य वाशिष्ठ मत है। इस मत के अनुसार पहले वर्तुल (ॐ) बोलकर फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः जोडकर (ॐ चन्द्रायै नमः) वशिष्ठ योग के स्वामी हो गए थे, इस प्रकार आनन्द करने वाली श्रीदेवी को योगीजन जपते हैं।

कथं हिरण्मयी ? चतुर्दलादारभ्यानाहतपर्यन्तं स्वर्णमयी भूत्वा सूर्यांशुवदुदेति जगतो हिताय रणे शत्रून् हन्तुं प्रकृतिपारस्थितत्रिगुणात्मकमण्डलान्वितव्योम्नि निवसति सा हिरण्मयीत्येतद्दिव्यश्रुतिसाङ्कल्पिकमतमनेन वर्तुलमुक्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमो योजयित्वा योगसिद्धिप्रदां योगिनो जपन्ति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - किस प्रकार से हिरण्मयी है ? जो चार दलों वाले मूलाधार से आरम्भ करके अनाहत चक्र पर्यन्त स्वर्णमयी होकर सूर्यकिरणों के समान उदित होती है, संसार के हितार्थ युद्ध में शत्रुओं का संहार करने के उद्देश्य से (पार्थिव) प्रकृति के बाहर स्थित तीनों गुणों से बने मण्डल से

परिपूर्ण आकाश में निवास करती है, वह हिरण्मयी है, ऐसा दिव्य वेदसंकल्प का मत है। इस मत के अनुसार पहले वर्तुल (ॐ) बोलकर फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः जोडकर (ॐ हिरण्मय्यै नमः) योग की सिद्धि प्रदान करने वाली श्रीदेवी को योगीजन जपते हैं।

कूटवृत्तिमत्राह

कीदृशो हिरण्यवर्णादिकूटानुसारं श्रीविग्रहः ? दिव्यवृत्तिवर्णने हइरणयवआईसउजतचनदमकूटवर्णानामाचारेण हिरण्यवर्णादयो वर्णिताः। गगनेस्थिता हंसवर्णा जगत्प्राणेश्वरी शान्तिकर्त्रीति हकूटार्थः। सूक्ष्मविद्या गुह्यतत्त्वा नित्यस्वरूपा शान्तचित्तेति इकूटार्थः। रक्तवर्णा पावकतेजोमयी प्रकाशदर्शना दीप्ता व्यापिनी ब्रह्मशब्दगायिका श्रीशैलसंस्थिता विश्वतोमुखीति रकूटार्थः। निर्गुणा निष्कला योगिनी समृद्धिबोधिनी त्रिवेदगुणकालनेत्रीति (नयनार्थेऽङ्गार्थे च) णकूटार्थः। युगान्तश्वसना यशस्करी लोकलोलाग्नेयप्रभा पापहर्त्री सर्वेश्वरी सुमुखेश्वरीति यकूटार्थः। सागरोद्भवा वारुणी शङ्करी ध्वनिवाचिकेति वकूटार्थः। विजयानन्ता विश्वान्तिका मानदा भगमालिनीति आकूटार्थः। त्रिमूर्तिर्लोलाक्षी वाग्विशुद्धा कालोत्तरीया वैष्णवी मोहिनी कुचद्वन्द्वयुता महामायेति ईकूटार्थः। सुयशा भृग्वीशा जगद्बीजा दुर्गोत्तारिणी कुलोज्ज्वला (कौलार्थे) पराक्षरा वेगवतीति सकूटार्थः। वर्तुलाक्षी (श्रुत्यर्थे) कल्याणवाचिकामरेशा विघ्नहन्त्री मही पारद्वीपा शत्रुघ्नी कामघ्नीति उकूटार्थः। भोगदा विजया स्थिरा जेत्री लम्बोदरी (युद्धार्थे चाङ्गार्थे) सुराधिपा मदविह्वलेति जकूटार्थः। पूतना शुद्धिर्शक्तिर्ध्वजा रत्नकण्ठानङ्गमदनातुरेति तकूटार्थः। सुदर्शनात्मशक्तिश्चतुर्मुण्डधरा (आथर्वणार्थे) चेतनैकरूपा चन्दनेति चकूटार्थः। विश्वपावनी

शिवानादिस्तरणी गिरिनायिकोर्द्ध्वासिनीति नकूटार्थः। धात्री दात्री सुषुम्ना सुचञ्चला जितेन्द्रिया दुर्गा स्वस्तिका कुटिलरूपेति दकूटार्थः। काली क्लेशिता महान्तिका वसुधा पुरुषवाचिका महावीरा मातङ्गमालिनी प्रमत्ता दीप्तिसंज्ञकेति मकूटार्थः।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - हिरण्यवर्णा आदि नामों के कूटार्थ के अनुसार श्रीदेवी का विग्रह कैसा है ? दिव्यवृत्ति में वर्णित नामों में ह-इ-र-ण-य-व-आ-ई-स-उ-ज-त-च-न-द- एवं म-कूट के आचार के अनुसार हिरण्यवर्णा आदि वर्णित हैं। वह आकाश में स्थित है, हंस के समान शुभ्र वर्ण अथवा विवेकपूर्ण स्वभाव की है, संसार के प्राणों की स्वामिनी है, शान्ति करने वाले वाली है, ऐसा 'ह' का कूटार्थ है। सूक्ष्मविद्या, गुप्त तत्त्व वाली, अपने रूप की नित्यता से युक्त, शान्तचित्त है, ऐसा 'इ' का कूटार्थ है। वह लाल रंग की है, अग्नि के समान तेज से युक्त है, प्रकाशित, प्रदीप्त, सर्वत्र स्थित, ब्रह्मशब्द का गान करने वाली, श्रीशैल में रहने वाली, सम्पूर्ण विश्व की ओर मुख वाली है, ऐसा 'र' का कूटार्थ है। गुणपाश एवं विभाजन से रहित, योगिनी, समृद्धि का बोध कराने वाली, तीनों वेद-गुण-कालरूपी नेत्रों से युक्त अथवा इनका उन्नयन करने वाली, ऐसा 'ण' का कूटार्थ है।

जिसके श्वास से युगों का संहार होता है, यश करने वाली, संसार को चलायमान करने वाली, अग्नि के समान प्रभा वाली, पाप का हरण करने वाली, सबों पर शासन करने वाली, सुन्दर मुख की स्वामिनी, ऐसा 'य' का कूटार्थ है। सागर से उत्पन्न, वरुण की पुत्री, कल्याण करने वाली, परादि ध्वनियों की वाचिका, ऐसा 'व' का कूटार्थ है। विजया, अन्त से रहित, विश्व का अन्त करने वाली, सम्मान देने वाली, ऐश्वर्य से सुसज्जित, ऐसा 'आ' का कूटार्थ है। त्रिदेवों की शक्तिरूपा, चञ्चल नेत्रों वाली, विशुद्ध वाणी से युक्त,

काल से परे, वैष्णवी, मोहित करने वाली, स्तनद्वय से युक्त, महामाया, ऐसा 'ई' का कूटार्थ है। सुन्दर यश वाली, भृगु की स्वामिनी, संसार की कारणभूता, कष्ट से उद्धार करने वाली, कुल (वंश अथवा कुण्डलिनी) की उज्ज्वलता से युक्त, परा, कभी क्षय न होने वाली, वेग से युक्त, ऐसा 'स' का कूटार्थ है। गोल नेत्रों वाली अथवा प्रणवरूपी नेत्रों वाली, कल्याणप्रदा वाणी बोलने वाली, देवताओं की स्वामिनी, विघ्ननाश करने वाली, पृथ्वी, संसार में परे दिव्य निवास वाली, शत्रुओं को मारने वाली, ऐसा 'उ' का कूटार्थ है। भोग प्रदान करने वाली, विशिष्टता से जय प्राप्त करने वाली, स्थिर तत्त्व वाली, जीतने वाली, बड़े पेट वाली (जिसके उदर में ब्रह्माण्ड है) अथवा दीर्घकालिक युद्ध करने वाली, देवताओं अथवा अमृत की स्वामिनी, मद से विह्वल रूप वाली, ऐसा 'ज' का कूटार्थ है।

पवित्र करने वाली, शुद्धि, शक्ति,गतिशालिनी, कंठ में रत्न धारण करने वाली, ब्रह्मरतिसमागम के लिए आतुर, ऐसा 'त' का कूटार्थ है। दिखने में सुन्दर रूप वाली, आत्मशक्ति, चारों अथर्व-शीर्ष को धारण करने वाली (देव्यथर्वशीर्ष में शेष चारों की शक्ति निहित है), चेतना, अपरिवर्तनीय स्वरूप वाली, भक्तों को आह्लादित करने वाली, ऐसा 'च' का कूटार्थ है। विश्व को पवित्र करने वाली, शिवा, आदि से रहित, तारने वाली, पर्वतस्थ पीठों की नायिका एवं उनके ऊपर निवास करने वाली, ऐसा 'न' का कूटार्थ है। पोषण करने वाली, अभीष्ट देने वाली, ब्रह्ममार्ग वाली, अच्छी प्रकार से चञ्चल स्वभाव वाली, इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने वाली, कठोर रूप वाली अथवा कष्ट से बचाने वाली, कल्याणमयी, क्लिष्ट स्वरूप वाली, ऐसा 'द' का कूटार्थ है। कालरूपिणी, (द्रव्यरूप में क्षीण या व्यय होने से) कष्ट पाने वाली, सबसे बड़ी संहारकर्त्री, धन या प्राण को धारण करने वाली, ब्रह्म का वर्णन करने वाली, महान् पराक्रम से युक्त, हाथियों से सुशोभित, प्रमत्ता, ऐसा 'म' का कूटार्थ है।

तत्त्ववृत्तिमत्राह

मन्त्रस्यास्य चिक्लीतकर्दमावृषी, सिद्धिदात्री देवता, श्रीमिति बीजं, सर्वार्थसाधिका शक्तिः, भुवनेश्वरी महाविद्या, रजोगुणो, रसना ज्ञानेन्द्रियं, वाक्कर्मेन्द्रियं, मध्यमः स्वरो भूतत्त्वम्, प्रकृतिः कला, ह्रीमित्युत्कीलनम्प्रवाहिनी मुद्रा भवति। ऋषेर्न्यासस्सहस्रारे शिरसि, देवतान्यासो द्वादशारे हृदि, बीजन्यासः षडारे स्वाधिष्ठाने, शक्तिन्यासो दशारे नाभौ, विद्यान्यासः षोडशारे कण्ठे, गुणन्यासो मनसि, ज्ञानेन्द्रियन्यासश्चेतसि, कर्मेन्द्रियन्यासः कर्मेन्द्रियेषु, स्वरन्यासः कण्ठमूले, तत्त्वन्यासश्चतुरारे मूलाधारे, कलान्यासः करतले, तथोत्कीलनन्यासः पादयोर्मुद्रान्यासस्तु सर्वाङ्गे भवति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - श्रीसूक्त की प्रथम ऋचा के ऋषि चिक्लीत एवं कर्दम हैं। सिद्धिदात्री देवता हैं तथा श्रीं बीज है। सर्वार्थसाधिका शक्ति है, इसकी महाविद्या भुवनेश्वरी एवं इसका गुण रजोगुण है। रसना इसकी ज्ञानेन्द्रिय तथा वाणी इसकी कर्मेन्द्रिय है। इसका स्वर मध्यम एवं तत्त्व पृथ्वी है। इसकी कला का नाम प्रकृति है तथा ह्रीं बीज से उत्कीलन होता है। इसकी मुद्रा प्रवाहिनी होती है। ऋषियों का न्यास शीर्षभाग के सहस्रार चक्र में होता है। देवता का न्यास हृदय के द्वादशार अनाहत चक्र में होता है। बीज का न्यास षडार स्वाधिष्ठान में एवं शक्ति का न्यास नाभि के दशार मणिपुर चक्र में होता है। महाविद्या का न्यास कंठ के षोडशार विशुद्धि में, गुण का न्यास मन में तथा ज्ञानेन्द्रिय का न्यास चित्त में होता है। कर्मेन्द्रिय का न्यास कर्मेन्द्रियों में होता है। स्वर का न्यास कंठ के मूल में तथा तत्त्व का न्यास चतुरार मूलाधार में होता है। कला का न्यास हथेली में तथा पैरों में उत्कीलन का न्यास होता है। मुद्रा का न्यास सभी अंगों में होता है।

नृसिंहवृत्तिमत्राह

श्रीसूक्तस्य प्रथमर्चं द्वौ नृसिंहवर्णौ सम्पुटीकृत्य रक्षतः। उकारश्चादावन्ते वह्नियुतो गकारः। एवमुग्रो निगद्यते। उद्गिरति विश्वमुद्गीर्णं ग्रसतीत्यथ शत्रूणां भयवर्द्धनकारणमुग्ररूपं धारयति तथा चेन्द्रियनिग्रहघर्षणोद्गतं क्रोधं रक्षतीत्यथवान्तरे धारयति तस्मादुग्रः।

पाशुपतादिभिरुग्रैरुपगीयमानस्तथोग्रशास्त्रानुद्गिरति तेषु रमते यस्स उग्रः। अस्याधिष्ठाता सङ्कर्षणव्यूहः। विष्णोरुद्दामोदय उकारश्च। दिव्योपदेशेन भौवादिकगदं नाशयतीति गकारः। कृष्णतिलवद्विश्वं यस्मिन्प्रकाशते स रकारः।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - श्रीसूक्त की प्रथम ऋचा को सम्पुटित करते हुए दो नृसिंहवर्ण रक्षा करते हैं। प्रारम्भ में उकार एवं अन्त में अग्नि से युक्त गकार (ग्र) होते हैं, इस प्रकार से 'उग्र' कहा गया है। जो विश्व को उत्पन्न करता है, उत्भूत विश्व को जो ग्रास बना लेता है, शत्रुओं के भय को बढाने वाले उग्ररूप को धारण करता है तथा इन्द्रियों को संयमित करने के संघर्ष से उत्पन्न क्रोध को संरक्षित अथवा अपने अंदर धारण करता है, वह उग्र है। पाशुपत आदि उग्रसाधकों के द्वारा जिसकी स्तुति होती है तथा उग्रशास्त्रों की जो रचना करता है एवं उनमें रमण करता है, वह उग्र है। इसका अधिष्ठाता सङ्कर्षणव्यूह है। विष्णु का विद्युत् के समान उदय उकार है। दिव्य उपदेशों के द्वारा जो सांसारिक रोगों का नाश करता है, वह गकार है। काले तिल के समान जिसमें विश्व प्रकाशित है, वह रकार है।

॥इति हिरण्याधिकारः॥

--*

॥अथ जातवेदाधिकारः ॥

तां म॒ आव॑ह॒ जात॑वेदो ल॒क्ष्मीमन॑पगा॒मिनी॑म्।
यस्या॒ां हिर॑ण्यं वि॒न्देय॒ं गामश्व॒ं पुरु॑षान॒हम् ॥ २॥

शङ्करभाष्यम्

लोकवृत्तिमत्राह

तां पूर्वोक्तगुणशीलसम्पन्नां लक्ष्मीं मदर्थमामन्त्रय। मां त्यक्त्वान्यपार्श्वं गन्तुं नोत्सुकामनपायिनीमनपगामिनीं सन्निधापय। यस्यां श्रियां श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तफलशक्तियुतायां सन्निहितैश्वर्यप्रभावेण हिरण्यं द्रविणं शत्रुनाशं वा, गां धेनुवृषमहिषप्रभृतिजीवानथवा दिव्यश्रुतिज्ञानम्, अश्वं तुरगगजप्रभृतिवाहनोपयोगिनः कुशलेन्द्रिययुक्तकलेवरं वा, पुरुषान्भृत्यपरिचारकादिजनान् क्षराक्षरोत्तमपुरुषाणां ज्ञानं वा विन्देयं प्राप्नुयामित्यर्थः।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - उस पूर्वोक्त शील एवं गुणों से संपन्न लक्ष्मी को मेरे निमित्त आमन्त्रित करो। मुझे छोड़कर किसी और के पास जाने के लिए जो उत्सुक न हो उस अनपायिनी और अनपगामिनी को स्थापित करो। जिस श्री में वेद, स्मृति, पुराण में बताये गए फल को देने की शक्ति है, उसके अन्दर निहित प्रभाव से हिरण्य अर्थात् धन अथवा शत्रुनाश को, गौ अर्थात् गाय, बैल, भैंसा आदि जीवों या दिव्य वेद ज्ञान को, अश्व अर्थात् घोड़े हाथी आदि वाहन के लिए उपयोगी पशुओं अथवा स्वस्थ एवं कुशल अंगों से युक्त शरीर को, पुरुष अर्थात् नौकर चाकर आदि लोगों अथवा क्षर-अक्षर-उत्तम संज्ञक पुरुषों के ज्ञान को मैं प्राप्त करूँ, यह अर्थ है।

श्रीनिग्रहाचार्यकृत-शङ्करभाष्य

दिव्यवृत्तिमत्राह

कथं लक्ष्मीः ? लक्षणाख्यभावान् क्षिपति जगतो लयं प्रेरयति वा, लयमिति निर्माणं लयमिति निवासो लयमिति प्रलयं, सृष्टिस्थितिप्रलयघटनापरिवर्तनहेतुभूता तस्मादेव लक्ष्मीः। सर्वेषां स्थावरजङ्गमजीवानां साक्षीभूता शुभाशुभदर्शिका भवति तथा च लोकपालकस्य विष्णोर्नित्यवैभवास्ति तस्माल्लक्ष्मीः। सर्वप्रमेयज्ञानानां लक्ष्यमिति लक्ष्मीः। मितिशब्दस्वरूपा मितिमानस्वरूपा लक्षणीया त्रिगुणात्मकङ्कामभावं क्षिपति प्रेरयति वा लक्ष्मीः। व्यक्ताव्यक्तसत्त्वसंस्थिता तेषां प्रेरयित्री क्षेपणी वा भवति, स्वात्मतत्त्वं क्षिपति क्षपयति, सज्जनानां वृजिनं क्षिणोति, क्षमा भूत्वापराधान् क्षमयति मन्यते मान्या भवति वा लोकान्मीयते सा लक्ष्मीरिति दिव्यकापिलमतमनेन वर्तुलमुक्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमो योजयित्वा लोकालोकगमनभूतिदात्रीं योगिनो जपन्ति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - किस प्रकार से लक्ष्मी है ? लक्षण कहलाने वाले भावों को प्रेरित करती है, संसार को लय के लिए प्रेरित करती है। लय का अर्थ 'निर्माण' है, लय का अर्थ 'निवास' है, लय का अर्थ 'प्रलय' है। सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय की घटनाओं के परिवर्तन की कारिका होने से लक्ष्मी है। सभी स्थावर एवं जङ्गम जीवों की साक्षिणी है, शुभाशुभ का दर्शन करती या कराती है तथा संसार का पालन करने वाले विष्णु की सदैव रहने वाली वैभवशक्ति हैं, इसीलिए लक्ष्मी है। सभी सैद्धान्तिक ज्ञानों की लक्ष्य है, इसीलिए लक्ष्मी है। मिति का अर्थ 'शब्द' है, मिति का अर्थ 'मान' है, 'शब्द' एवं 'परिमाण' की लक्षणभूता होकर तीनों गुणों से युक्त कामनाओं के भाव का प्रक्षेपण अथवा उत्प्रेरण करती है, इसीलिए लक्ष्मी है। व्यक्त एवं अव्यक्त सत्वभावों में स्थित

होकर होकर उनकी प्रेरिका होती है, स्वयं से ही स्वयं को प्रेरित करती और करवाती है, सज्जनों के पाप एवं कष्ट को क्षीण करती है, पृथ्वी के रूप से अपराध को क्षमा करती है, अथवा दण्ड देती है और सम्मानित होती है, संसार का भेदन करती है, वह लक्ष्मी है ऐसा दिव्य कापिल मत है। इस मत के अनुसार पहले वर्तुल (ॐ) बोलकर फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः जोडकर (ॐ लक्ष्म्यै नमः) लोकलोकान्तरों के गमन की शक्ति प्रदान करने वाली श्रीदेवी को योगीजन जपते हैं।

कथमनपगामिनी वानपायिनी ? ज्ञानदेहमाश्रित्य विष्णोर्हृदि निवसत्यात्मयोगज्ञानदा भवति तस्यानुसरणं विसृज्य नान्यं गच्छति तस्मादनपगामिनी। स्वभक्तानामपकारमकुर्वन्ती अधोगमनकारकैस्तमोभिर्न बाध्यते तस्मादनपगामिनी। आपश्च भूत्वा द्रवसरस्वतीरूपेणापावाहयन्ती विश्वामित्रप्रेरणया वशिष्ठमुवाह। मुनिभिः संस्तुता तं सत्यसन्धं मत्वा मुमोच विश्वामित्ररूपिणारिणा ररक्ष तस्मादनपगामिनीति दिव्यमहर्षिमतमनेन वर्तुलमुक्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमो योजयित्वा शत्रुनाशकर्त्रीं योगिनो जपन्ति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - किस प्रकार से अनपगामिनी या अनपायिनी है ? ज्ञानकलेवर का आश्रय लेकर विष्णु के हृदय में निवास करती है और आत्मा के ब्रह्म से मिलन का ज्ञान देती है, उस (विष्णु) के अनुसरण को छोड़कर अन्य के पास नहीं जाती है, इसीलिए अनपगामिनी है। अपने भक्तों का अपकार न करते हुए, नीचे गिराने वाले तमोगुण के द्वारा बाधित नहीं होती है इसीलिए अनपगामिनी है। जल बनकर सरस्वती नदी के रूप से बहती हुई, विश्वामित्र के कहने पर वशिष्ठ को बहा ले गयी थी। मुनियों के द्वारा स्तुति करने पर उस (वशिष्ठ) को सत्य के मार्ग पर स्थित जानकर विश्वामित्ररूपी शत्रु

से रक्षा की, इसीलिए अनपगामिनी है, ऐसा दिव्य महर्षि मत है। इस मत के अनुसार पहले वर्तुल (ॐ) बोलकर फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः जोडकर (ॐ अनपगामिन्यै नमः) शत्रुओं का नाश करने वाली श्रीदेवी को योगीजन जपते हैं।

कूटवृत्तिमत्राह

कीदृशो लक्ष्म्यादिकूटानुसारं श्रीविग्रहः ? दिव्यवृत्तिवर्णने लक्षमईअनपगआइकूटवर्णानामाचारेण लक्ष्म्यादयो वर्णितास्तेषु मईनआइकूटार्थाः पूर्वप्रसङ्गेषु वर्णिताश्शेषानधुना वक्ष्ये। पृथ्वी वाणी क्रिया माता भामिनी वेगिनी शक्रवाचिकेति लकूटार्थः। कोपा कालजिह्वा युगान्तिका क्षेत्रपाला (देहार्थे लोकार्थे च) महानन्ता माया महातेजा संवर्तिकेति क्षकूटार्थः। सुरेशा पूर्णोदरी वागीशा सृष्टिर्मेधा कामरूपा आद्यजा प्रियंवदेति अकूटार्थः। तीक्ष्णा लोहिता पञ्चमी (मूलप्रकृत्यर्थे) रमा गुह्यकर्त्री कालरात्रिर्लोकाक्षी द्वितीया (पुरुषादपरा) निरञ्जनेति पकूटार्थः। गौरी गौरवा (वेदार्थे) गङ्गा गोकुलेश्वरी पञ्चान्तिका (क्लेशार्थे) भोगवती शिवदर्शनेति गकूटार्थः।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - लक्ष्मी आदि कूटों के अनुसार श्रीविग्रह कैसा है? दिव्यवृत्ति के वर्णन में ल-क्ष-म-ई-अ-न-प-ग-आ-इ-कूट वर्णों के आचार के द्वारा लक्ष्मी आदि वर्णित हैं उनमें से म-ई-न-आ-इ कूट के अर्थों का वर्णन पूर्व के प्रसंगों में किया जा चुका है, शेष को अब कहता हूँ। पृथ्वी, वाणी, क्रिया, माता, भामिनी, वेगिनी और शक्रवाचिका, ये 'ल' के कूटार्थ हैं। कोपा, काल -जिह्वा, युग का अंत करने वाली, शरीर अथवा संसार की रक्षा करने वाली, महानन्ता, माया, महान् तेज से युक्त, सम्वर्तिका, ये 'क्ष' के कूटार्थ हैं। देवताओं की स्वामिनी, युद्ध को पूर्ण करने वाली अथवा संतृप्त इच्छाओं वाली,

वाणी की स्वामिनी, सृष्टि, मेधा, इच्छानुसार रूप धारण करने वाली, सबों का आरम्भस्थल, अजन्मा, प्रिय बोलने वाली, ये 'अ' के कूटार्थ हैं। तीक्ष्णा, रक्त वर्ण वाली, पञ्च मूलप्रकृति - दुर्गा, सरस्वती, गंगा, लक्ष्मी एवं राधा/सीता, रमा, गुप्त कार्य करने वाली, कालरात्रि, संसार रूपी नेत्रों से युक्त, पुरुष से दूसरी - प्रकृति, निरंजना. ये 'प' के कूटार्थ हैं। गौरी, वेद की वाणी से युक्त, गंगा, गोकुल की स्वामिनी, पञ्चक्लेश (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष एवं अभिनिवेश) का नाश करने वाली, भोगों से युक्त, कल्याणकारी स्वरूप वाली, ये 'ग' के कूटार्थ हैं।

तत्त्ववृत्तिमत्राह

मन्त्रस्यास्य चिक्लीतकर्दमावृषी, सर्वकामप्रदा देवता, श्रीमिति बीजम्, ज्योतिश्शक्तिः, कमला महाविद्या, रजोगुणः, श्रोत्रं ज्ञानेन्द्रियम्, वाक्कर्मेन्द्रियमुच्चस्वरो भूतत्त्वम्, विद्या कला, क्लीमित्युत्कीलनम्, सङ्कोचिनी मुद्रा भवति। ऋषेर्न्यासस्सहस्रारे शिरसि, देवतान्यासो द्वादशारे हृदि, बीजन्यासः षडारे स्वाधिष्ठाने, शक्तिन्यासो दशारे नाभौ, विद्यान्यासः षोडशारे कण्ठे, गुणन्यासो मनसि, ज्ञानेन्द्रियन्यासश्चेतसि, कर्मेन्द्रियन्यासः कर्मेन्द्रियेषु, स्वरन्यासः कण्ठमूले, तत्त्वन्यासश्चतुरारे मूलाधारे, कलान्यासः करतले, उत्कीलनन्यासः पादयोर्मुद्रान्यासस्तु सर्वाङ्गे भवत्यस्य मन्त्रस्य शान्तरसो भवति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - श्रीसूक्त की द्वितीय ऋचा के ऋषि चिक्लीत एवं कर्दम हैं। सर्वकामप्रदा देवता हैं तथा श्रीं बीज है। ज्योति शक्ति है, इसकी महा-विद्या भुवनेश्वरी एवं इसका गुण रजोगुण है। श्रोत्र इसका ज्ञानेन्द्रिय तथा वाणी इसकी कर्मेन्द्रिय है। इसका स्वर उच्च एवं तत्त्व पृथ्वी है। इसकी कला का नाम विद्या है तथा क्लीं बीज से उत्कीलन होता है। इसकी मुद्रा संकोचिनी

होती है। ऋषियों का न्यास शीर्षभाग के सहस्रार चक्र में होता है। देवता का न्यास हृदय के द्वादशार अनाहत चक्र में होता है। बीज का न्यास षडार स्वाधिष्ठान में एवं शक्ति का न्यास नाभि के दशार मणिपुर चक्र में होता है। महाविद्या का न्यास कंठ के षोडशार विशुद्धि में, गुण का न्यास मन में तथा ज्ञानेन्द्रिय का न्यास चित्त में होता है। कर्मेन्द्रिय का न्यास कर्मेन्द्रियों में होता है। स्वर का न्यास कंठ के मूल में तथा तत्त्व का न्यास चतुरार मूलाधार में होता है। कला का न्यास हथेली में तथा पैरों में उत्कीलन का न्यास होता है। मुद्रा का न्यास सभी अंगों में होता है। इस मन्त्र का रस शान्त है।

नृसिंहवृत्तिमत्राह

श्रीसूक्तस्य द्वितीयर्चं द्वौ नृसिंहवर्णौ सम्पुटीकृत्य रक्षतः। आदौ महामायायुतो वकारश्चान्ते रकारश्च। एवं वीरो निगद्यते। उत्साहातिशयोत्थापको वीरः। देवानां सङ्घे वीरभावं दर्शयतीति वीरः। विशेषप्रकारेण लोकान्प्रेरयति तान्त्रमयति तेषु रमते वा वीरः। विविधं जडचेतनसमन्वितं जगदुत्प्रेरयति कालरूपमाश्रित्य स वीरः। ईरा दशप्राणसंज्ञा। देहस्थवायवो येन विजिताः स वीरः। मायाक्लेशकर्षितान्जीवान्वीरत्वेन त्रायते तस्माद्वीरः। वेदस्याकर्ता सन् तान्त्रिगुणात्मकान् करोति मानवसृष्टिविद्यां वीरयति शास्त्रानुष्ठाने व्यापारयति तस्माद्वीरः। अस्याधिष्ठाता प्रद्युम्नव्यूहः। सद्धर्मस्य प्रतिष्ठाता यस्स वकारः। मायाज्ञानस्योपदेष्टा यस्स ईकारः। विद्यादोषानग्निवन्नाशयति स रकारः।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - श्रीसूक्त की दूसरी ऋचा को दो नृसिंह वर्ण संपुटित करके रक्षा करते हैं। पहले महामाया (ई) से युक्त वकार एवं अन्त में रकार, इस प्रकार से वीर शब्द बनता है। उत्साह को अतिशय मात्रा में प्रदर्शित करने

वाला वीर है। देवताओं के समूह में वीरभाव का प्रदर्शन करने वाला वीर है। विशेष प्रकार से लोकों को प्रेरित करता है, उन्हें रमण करवाता है और उनमें रमण करता है, वह वीर है। अलग अलग प्रकार के जड-चेतनों से युक्त संसार को काल के रूप का आश्रय लेकर जो प्रेरित करता है, वह वीर है। दसों प्राण को ईरा कहते हैं। शरीर में स्थित वायु जिसके द्वारा जीत लिए गए हैं वह वीर है। माया के क्लेश से कष्ट पा रहे जीवों को अपनी वीरता से रक्षा करता है, इसीलिए वह वीर है। वेदों का कर्ता न होने पर भी उन्हें तीनों गुणों से युक्त करता है, मनु की सृष्टि विद्या का आख्यान करता है, शास्त्रसम्मत कर्मों का विस्तार करता है, इसीलिए वीर है। इसका अधिष्ठाता प्रद्युम्नव्यूह है। जो सद्धर्म की प्रतिष्ठा करता है वह वकार है। माया के ज्ञान का जो उपदेश करता है, वह ईकार है। विद्या के दोष को अग्नि के समान नाश करता है, वह रकार है।

॥इति जातवेदाधिकारः ॥

*_*_*

॥अथ प्रबोधाधिकारः ॥

अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रबोधिनीम्।
श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मादेवीर्जुषताम् ॥ ३ ॥

शङ्करभाष्यम्

लोकवृत्तिमत्राह

लोकस्य व्यापनाच्छादनरक्षणादिकर्मशीलं नारायणमश्वसंज्ञकं पूर्वमालयमिति मन्यते साश्वपूर्वा। रंहणधर्मिणो गतिशीलस्य रथस्य शरीरस्य मध्यभागे हृत्प्रदेशे चितिरूपेण निवसति सा रथमध्या। योगिनां चित्ते गजवन्निनादयन्ती कल्मषं नाशयन्ती प्रबोधयत्यथवा गजेन्द्रादिक्लिष्टभक्तानामार्तनादं श्रुत्वा नारायणं प्रबोधयति सा हस्तिनादप्रबोधिनी। यस्याः परिकरमण्डलेऽश्विनोऽग्रभागे रथिनो मध्ये भवन्ति, वाहिन्यां हस्तिनादं श्रुत्वा या प्रसन्ना भवति सा पूर्वोक्तगुणशीलेति। एतादृशमैश्वर्यं दिव्यावदानं धत्ते सा श्रीर्देवी। तां श्रियमावाहयामि सा मां प्राप्नुयादित्यर्थः।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - संसार की व्याप्ति या आच्छादन, रक्षा आदि कर्मों के गुण वाले अश्वसंज्ञक नारायण को जो पूर्व अर्थात् निवास मानकर रहती है, वह अश्वपूर्वा है। रंहण अर्थात् गतिशील रथरूपी शरीर के मध्यभाग हृदय में जो चेतनारूप से निवास करती है, वह रथमध्या है। योगियों के चित्त में हाथी के समान नाद करती हुई, पापों का नाश करती हुई उन्हें प्रबुद्ध करती है, अथवा गजेन्द्र आदि कष्ट पा रहे भक्तों के आर्तनाद को सुनकर नारायण को जगाती है, वह हस्तिनादप्रबोधिनी है। जिसके परिकरमण्डल में घुड़सवार दल आगे

एवं रथियों का दल मध्यभाग में होता है, सेना में हाथियों का नाद सुनकर जो प्रसन्न होती है, वह पहले के बताए गए गुणशील (अश्वपूर्वादि) वाली है। इस प्रकार के ऐश्वर्य को एवं दिव्य स्वरूप को जो धारण करती है, वह श्री और देवी है। उस श्री का मैं आवाहन करता हूँ, वह मुझे प्राप्त हो, ऐसा अर्थ है।

दिव्यवृत्तिमत्राह

कथमश्वपूर्वा रथमध्या हस्तिनादप्रबोधिनीति ? अश्वा इति मनोबुद्ध्याद्यन्तःकरणेन्द्रियाणि। बुद्ध्यां तद्रूपेषु च निवसन्ती विषयेष्वाकर्षयति तस्मादश्वा। पूरिति वाहिनी। प्राणानां वहनं करोत्यात्मरूपेण देहे निवसन्ती देहवहनं करोति तस्मात्पूर्वा। एवं बुद्धिप्राणदेहस्था त्रिविधात्मिकाश्वपूर्वा भवति। योगिनां योगारम्भे पूर्वकाले वा अश्ववद्धेषाघोषं करोति तस्मादश्वपूर्वा। मध्यनाड्यां नाडीमध्यं वा समायाता रथघुर्घुरवन्नादं करोति तस्माद्रथमध्या। व्योमे विद्युदिव चपला भूत्वा हस्तिवद्गर्जयत्यथवा व्योमरन्ध्रे नादेन प्रबोधयति सा हस्तिनादप्रबोधिनीति दिव्यमुनिमतमनेन वर्तुलमुक्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमो योजयित्वा प्रबोधकारिणीं योगिनो जपन्ति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - किस प्रकार से अश्वपूर्वा, रथमध्या और हस्तिनाद-प्रबोधिनी है ? मन, बुद्धि आदि अन्तःकरण की इन्द्रियों को अश्व कहते हैं। बुद्धि में, उस-उस (कल्पित) रूप में निवास करती हुई विषयों के प्रति उस (बुद्धि) का आकर्षण करती है, इसीलिए अश्वा है। वहन करने को 'पू' कहते हैं। प्राणों का वहन करती है, आत्मरूप से देह में निवास करती हुई देह का वहन करती है, इसीलिए पूर्वा है। इस प्रकार से बुद्धि, प्राण एवं देह में स्थित होकर तीन प्रकार से अश्वपूर्वा होती है। योगियों के योगारम्भ में, योग के पूर्वकाल में घोड़े के हिनहिनाने के समान ध्वनि करती है, इसीलिए अश्वपूर्वा

है। मध्यनाड़ी (सुषुम्ना) में अथवा नाड़ियों के मध्यभाग में आकर रथ की घरघराहट के समान ध्वनि करती है, इसीलिए रथमध्या है। आकाश में बिजली के समान चञ्चल होकर हाथी के समान गर्जना करती है, अथवा आकाशतत्त्व से सम्बन्धि रन्ध्र में ध्वनि के माध्यम से प्रबोधन करती है, वह हस्तिनादप्रबोधिनी है, ऐसा दिव्य मुनिमत है। इस मत के अनुसार पहले वर्तुल (ॐ) बोलकर फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः जोड़कर (ॐ अश्वपूर्वायै नमः, ॐ रथमध्यायै नमः, ॐ हस्तिनादप्रबोधिन्यै नमः) प्रबोधन करने वाली श्रीदेवी को योगीजन जपते हैं।

कथं श्रीरिति ? कारुण्यवार्तां शृणोति, स्वभक्तानां पापान् हन्ति शृणति (हिंसायां) वा त्रिगुणैः संसारं विस्तारयति शृणति (विस्तारे) शाश्वतशरणदापि भवत्यथवा हरेर्निवासभूता श्रद्धया सुरैराकाङ्क्षिता भवति तस्माच्छ्रीः। मूलाधारे शान्तरवा मणिपुरे पश्याथवा रन्ती भवत्येवं वैखरीसहिता चतुःस्थानाश्रिता भवति, हरेराश्रयं गृह्णाति तस्माच्छ्रया। जयादिभिरादरेण संसेव्या भवति तस्माच्छ्रया। समाश्रितजनानां वृजिनं रेति, तेभ्यो राति कामान् तस्माच्छ्रीः। शमिति कल्याणम्। शन्तमा कल्याणमयोविग्रही। कल्याणशक्त्या प्रकाशयति लोकानिति शकारः। रत्यर्थे रकारः। सर्वेषां सर्वेषु च रमणं करोतीति रकारः। ईप्सार्थे ईकारस्तस्मात्कल्याणकर्त्री भूत्वा लोकान् रमयति लोकैराकाङ्क्षिता भवति तस्माच्छ्रीरिति दिव्यश्रीमतमनेन कमलाबीजमिति प्रथमं मायाबीजमिति द्वितीयं वर्तुलमिति तृतीयं योगिनो जपन्त्यपरे वर्तुलमुक्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमो योजयित्वा सर्वसम्पत्कारिणीं योगिनो जपन्ति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - किस प्रकार से श्री है ? लोगों की करुण पुकार को सुनती है, अपने भक्तों के पापों को मारती है अथवा तीनों गुणों से संसार का

विस्तार करती है, उन्हें नित्य शरण देने वाली बनती है, अथवा हरि के रहने का स्थान बनकर श्रद्धा के द्वारा देवताओं के द्वारा आकांक्षित होती है, इसीलिए श्री है। मूलाधार में शांत शब्द से रहती है (अथवा परा वाणी के रूप में है), फिर मणिपुर चक्र में पश्या अथवा रन्ती (अथवा पश्यन्ती वाणी के रूप में) होती है और वैखरी के साथ चार स्थानों में आश्रय लेती है, विष्णु का आश्रय ग्रहण करती है, इसीलिए श्रया कहते हैं। जयादि शक्तियों के द्वारा आदरपूर्वक सेवित होती है, इसीलिए भी श्रया है। अपने आश्रित लोगों के संकटों को समाप्त करती है और उन्हें कामनाएं प्रदान करती है, इसीलिए श्री है।
शम् का अर्थ कल्याण है। शन्तमा अर्थात् जिसका स्वरूप कल्याण से युक्त हो। अपनी कल्याणशक्ति से लोकों को प्रकाशित करती है, ऐसा शकार का अर्थ है। रति के अर्थ में रकार है। ईप्सा (इच्छा) के अर्थ में ईकार है। इस प्रकार से कल्याणकारिणी होकर संसार को रमण कराती है और लोकों के द्वारा इच्छित हो जाती है, अतएव श्री है, ऐसा दिव्य श्रीमत है। इस मत के अनुसार पहला मन्त्र कमलाबीज (श्रीं) है, दूसरा मन्त्र मायाबीज (ह्रीं) है और वर्तुल (ॐ) तीसरा मन्त्र है जिन्हें योगीजन जपते हैं। अन्य योगीजन पहले वर्तुल (ॐ) बोलकर फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः जोड़कर (ॐ श्रियै नमः) सभी सम्पदा को प्रदान करने वाली श्रीदेवी को जपते हैं।

कथं मा देवी वा ? मिनोति प्रक्षेपयति स्वेच्छयाखिलाङ्कृणोति मीयते वा माति लोकाञ्जगतः क्षये तस्मान्मा। सर्वेषामीश्वरी भूत्वा जीवेष्वात्मभावेन ममास्ति मदीयोऽस्तीत्युत्प्रेरयन्ती सर्वैरात्मवदीप्सिता भवति तस्मान्मेति वर्तुलमुक्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमो योजयित्वात्मदर्शिकां योगिनो जपन्ति। देवस्य हरेर्दयिता भूत्वा कर्मफलं वा सर्वान् कामान्ददाति कर्मावति रक्षति वा तस्माद्देवीति दिव्यमुनिमतमनेन वर्तुलमुक्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमो योजयित्वा भुक्तिमुक्तिदात्रीं योगिनो जपन्ति।

श्रीनिग्रहाचार्यकृत-शङ्करभाष्य

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - किस प्रकार से मा अथवा देवी है ? अपनी इच्छा से सबों को यत्र तत्र फेंकती है (नाना जन्मों में भेजती है), उनका संहार करती है, जगत् के विनाश के समय उसकी परिमिति बन जाती है, इसीलिए मा है। सबों की स्वामिनी बनकर जीवों के अन्दर आत्मभाव से 'यह मेरा है, यह मेरा ही है' ऐसी भावना की प्रेरणा देती हुई सबों के द्वारा 'अपने ही समान' इच्छित होती है, इसीलिए मा है। इस प्रकार से पहले वर्तुल (ॐ) बोलकर फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः जोड़कर (ॐ मायै नमः) आत्मतत्त्व का दर्शन कराने वाली श्रीदेवी को योगीजन जपते हैं।

देवता (विष्णु) की प्रियतमा होकर कर्मफल को, अथवा सबों की कामनाओं को देती है और उनकी रक्षा करती है, इसीलिए देवी है, ऐसा दिव्य मुनिमत है। इस मत के अनुसार पहले वर्तुल (ॐ) बोलकर फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः जोड़कर (ॐ देव्यै नमः) भोग एवं मोक्ष को देने वाली श्रीदेवी को योगीजन जपते हैं।

कूटवृत्तिमत्राह

कीदृशोऽश्वपूर्वादिकूटानुसारं श्रीविग्रहः? दिव्यवृत्तिवर्णने अशवपऊरआथमधयहसतइनदबओईएकूटवर्णानामाचारेणाश्वपूर्वादयो वर्णितास्तेषु अवपरआमयहसतइनदईकूटार्थाः पूर्वप्रसङ्गेषु वर्णिताश्शेषानधुना वक्ष्ये। कामरूपा, महामतिः, सौख्या, कुमारी, सुभगा, महालक्ष्मीः, कल्याणी, महेन्द्रानङ्गाङ्कुशेति शकूटार्थः। रतिः शान्तिर्भैरवी सरस्वती विलासिनी रूपाकर्षिणी विघ्नकर्त्री महाविद्येश्वरीति ऊकूटार्थः। स्थिरा महाग्रन्थी भद्रकाली वरदा भोगदेति थकूटार्थः। धनाख्या रुचिः शाश्वता योगिनीप्रिया शङ्खिनी विश्वपावनी धात्री लज्जा दीर्घजङ्घा मतिरिति धकूटार्थः। अवनी भूधरा त्रिलोचनप्रिया कपर्दिनी

भूमिः सुगमा वसुधाधिपेति बकूटार्थः। सद्योजाता गायत्री लक्ष्मी वाणी सर्वमङ्गला दिगम्बरा त्रैलोक्यविजया प्रज्ञा बीजादिकर्षिणी प्रीतिरिति ओकूटार्थः। वाग्भवा शक्तिर्भगा सूक्ष्मा कुण्डली मोहिनी योषिताधारशक्तिरिति एकूटार्थः।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - अश्वपूर्वा आदि कूटों के अनुसार श्रीविग्रह कैसा है ? दिव्यवृत्ति के वर्णन में अ-श-व-प-ऊ-र-आ-थ-म-ध-य-ह-स-त-इ-न-द-ब-ओ-ई-ए कूट वर्णों के आचार के द्वारा अश्वपूर्वा आदि वर्णित हैं उनमें से अ-व-प-र-आ-म-य-ह-स-त-इ-न-द-ई कूट के अर्थों का वर्णन पूर्व के प्रसंगों में किया जा चुका है, शेष को अब कहता हूँ। इच्छानुसार रूप धारण करने वाली, महामति, सुखशालिनी, कुमारी, सुभगा, महालक्ष्मी, कल्याणी, महेन्द्रा, कामदेव या ब्रह्म के द्वारा अंकुशरूप में प्रयुक्त होने वाली, ये 'श' के कूटार्थ हैं। रति, शान्ति, भैरवी, सरस्वती, विलासिनी, रूप का आकर्षण करने वाली, विघ्न करने वाली, महाविद्या की स्वामिनी, ये 'ऊ' के कूटार्थ हैं।

स्थिरा, महाग्रन्थी, भद्रकाली, वर देने वाली, भोग देने वाली, ये 'थ' के कूटार्थ हैं। धन नाम वाली, रुचि, शाश्वता, योगिनीप्रिया, शङ्खिनी, विश्व को पवित्र करने वाली, धात्री, लज्जा, दीर्घजङ्घा, मति, ये 'ध' के कूटार्थ हैं। अवनी, भूधरा, त्रिलोचनप्रिया, कपर्दिनी, भूमि, सुगमा, वसुधाधिपा, ये 'ब' के कूटार्थ हैं। सद्योजाता, गायत्री, लक्ष्मी, वाणी, सर्वमङ्गला, दिगम्बरा, त्रैलोक्यविजया, प्रज्ञा, बीजादिकर्षिणी, प्रीति, ये 'ओ' के कूटार्थ हैं। वाग्भवा, शक्ति, भगा, सूक्ष्मा, कुण्डली, मोहिनी, योषिता, आधारशक्ति, ये 'ए' के कूटार्थ हैं।

तत्त्ववृत्तिमत्राह

मन्त्रस्यास्य चिक्लीतकर्दमावृषी, महालक्ष्मीर्देवता, श्रीमिति बीजम्, पद्मावती शक्तिः, मातङ्गी महाविद्या, रजोगुणः, स्वर्ज्ञानेन्द्रियम्,

वाक्कर्मेन्द्रियम्, मध्यमः स्वरः, आकाशतत्त्वम्, शान्तिः कला, क्रोमित्युत्कीलनम्, योनिमुद्रा भवति। ऋषेर्न्यासस्सहस्रारे शिरसि, देवतान्यासो द्वादशारे हृदि, बीजन्यासः षडारे स्वाधिष्ठाने, शक्तिन्यासो दशारे नाभौ, विद्यान्यासः षोडशारे कण्ठे, गुणन्यासो मनसि, ज्ञानेन्द्रियन्यासश्चेतसि, कर्मेन्द्रियन्यासः कर्मेन्द्रियेषु, स्वरन्यासः कण्ठमूले, तत्त्वन्यासश्चतुरारे मूलाधारे, कलान्यासः करतले, उत्कीलनन्यासः पादयोर्मुद्रान्यासस्तु सर्वाङ्गे भवत्यस्य मन्त्रस्य शान्तरसो भवति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - श्रीसूक्त की तृतीय ऋचा के ऋषि चिक्लीत एवं कर्दम हैं। महालक्ष्मी देवता हैं तथा श्रीं बीज है। पद्मावती शक्ति है, इसकी महाविद्या मातङ्गी एवं इसका गुण रजोगुण है। आत्मा ही इसका ज्ञानेन्द्रिय तथा वाणी इसकी कर्मेन्द्रिय है। इसका स्वर मध्यम एवं तत्त्व पृथ्वी है। इसकी कला का नाम शान्ति है तथा क्रों बीज से उत्कीलन होता है। इसकी मुद्रा योनि होती है। ऋषियों का न्यास शीर्षभाग के सहस्रार चक्र में होता है।

देवता का न्यास हृदय के द्वादशार अनाहत चक्र में होता है। बीज का न्यास षडार स्वाधिष्ठान में एवं शक्ति का न्यास नाभि के दशार मणिपुर चक्र में होता है। महाविद्या का न्यास कंठ के षोडशार विशुद्धि में, गुण का न्यास मन में तथा ज्ञानेन्द्रिय का न्यास चित्त में होता है। कर्मेन्द्रिय का न्यास कर्मेन्द्रियों में होता है। स्वर का न्यास कंठ के मूल में तथा तत्त्व का न्यास चतुरार मूलाधार में होता है। कला का न्यास हथेली में तथा पैरों में उत्कीलन का न्यास होता है। मुद्रा का न्यास सभी अंगों में होता है। इस मन्त्र का रस शान्त है।

नृसिंहवृत्तिमत्राह

श्रीसूक्तस्य तृतीयर्चं द्वौ नृसिंहवर्णौ सम्पुटीकृत्य रक्षतः। आदौ मकारश्चान्ते

दीर्घाकाशश्च। तयोर्वृत्तिमग्रे चतुर्थ्यामृचि व्याख्यास्यामः।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - श्रीसूक्त की तीसरी ऋचा को दो नृसिंहवर्ण सम्पुटित करके रक्षा करते हैं। प्रारम्भ में मकार और अन्त में दीर्घाकाश, अर्थात् 'हा'। इन दोनों की वृत्ति आगे चौथी ऋचा में कहेंगे।

॥इति प्रबोधाधिकारः॥

--*

॥अथ पद्मवर्णाधिकारः ॥

कां॑ सो॒स्मि॒तां हिर॑ण्यप्रा॒कारा॑मा॒र्द्रां ज्वल॑न्तीं तृ॒प्तां त॒र्पय॑न्तीम्।
प॒द्मे॒ स्थि॒तां प॒द्मव॑र्णां तामि॒होप॑ह्वये॒ श्रियम् ॥ ४॥

शङ्करभाष्यम्

लोकवृत्तिमत्राह

कमिति सुखं वा जलम्। सुखस्वरूपिणीं सुखदात्रीं भववारिधेस्तरणीं कां सुस्मयसहितां दिव्यमणिस्वर्णाद्यमूल्यद्रव्यैर्निर्मितभवनां करुणयार्द्रचित्तां सूर्यसोमाग्निवद्भासमानां लोकभोगवासनाभिरुन्मनीं तृप्तां कान्तिक्षान्तिशीलोदारगुणैस्तर्पयन्तीं पद्मासनमुद्रायां पद्मनिर्मितासने वा संस्थितां पद्मगन्धां पद्मवन्मृदुगात्रां वा पद्मवर्णां सर्वसम्पद्युतां श्रियमत्र जीवने पूजनस्थले वामन्त्रये।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - कम् का अर्थ सुख या जल है। सुखस्वरूप से युक्त, सुख को देने वाली, संसार समुद्र से पार उतरने के लिए नौकास्वरूपा, अद्भुत आश्चर्य से युक्त, दिव्य मणि-स्वर्ण आदि अमूल्य सम्पदाओं से निर्मित भवन में रहने वाली, करुणा से द्रवित चित्त वाली, सूर्य-चन्द्रमा-अग्नि के समान प्रकाश से युक्त, सांसारिक भोगों एवं वासनाओं की ओर से आसक्तिरहित एवं तृप्त रहने वाली, सुन्दरता-क्षमा-शील-उदारता आदि गुणों से (संसार को) सन्तुष्ट करती हुई, पद्मासन की मुद्रा में अथवा पद्म से निर्मित आसन में बैठी हुई, पद्म के समान सुगन्ध वाली या पद्म के समान कोमल शरीर वाली पद्मवर्णा को, जो सभी प्रकार की सम्पत्ति से युक्त श्री हैं, उन्हें मैं यहां अपने जीवन या पूजन-स्थल में आमन्त्रित करता हूँ।

श्रीनिग्रहाचार्यकृत-शङ्करभाष्य

दिव्यवृत्तिमत्राह

कथं केति ? चिन्मयी सा सर्वप्राणिनामन्तःस्थिता शब्दायते तस्मात् का। निगमैर्वन्दितं ब्रह्म कोऽस्तीत्यन्वेषयति तस्मात् का। कमिति ब्रह्म। कपर्द्दिभिर्यद्ब्रह्मरूपं स्वाधीतं तस्याध्ययनतत्परान् सर्जयते सा केति दिव्यवैदिकमतमनेन वर्तुलमुक्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमो योजयित्वा स्वाध्यायफलदात्रीं योगिनो जपन्ति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - किस प्रकार से 'का' है ? चिन्मयी होकर वह सभी प्राणियों के अन्दर स्थित होकर अनहद्धनि करती है, इसीलिए 'का' है। वेदों के द्वारा वन्दित ब्रह्म को 'कौन है' ऐसा अन्वेषण करती है, इसीलिए 'का' है। 'क' का अर्थ ब्रह्म है। जटाधारी साधकों के द्वारा जिस ब्रह्मरूप का स्वाध्याय किया जाता है, उसके अध्ययन में तत्पर लोगों की सृष्टि करती है, वह 'का' है, ऐसा दिव्य वैदिक मत है। इस मत के अनुसार वर्तुल (ॐ) बोलकर फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः जोड़कर (ॐ कायै नमः) स्वाध्याय के फल को देने वाली श्रीदेवी को योगीजन जपते हैं।

कथं सोस्मिता ? उदितीति ब्रह्म। तस्य बृहत्त्वं विकासो वा स्मितम्। तस्माद्ब्रह्मणो व्यापकत्वमुस्मितम्। ब्रह्मणो व्यापकत्वेन सह यास्ते या सोस्मितेति दिव्यब्राह्ममतमनेन वर्तुलमुक्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमो योजयित्वा साधकविकासकर्त्रीं योगिनो जपन्ति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - किस प्रकार से सोस्मिता है ? उदिति या उत् ब्रह्म है। उसका विस्तार या विकास स्मित है। इसीलिए ब्रह्म की व्यापकता उस्मिता है। ब्रह्म की व्यापकता के साथ जो है, वह सोस्मिता है, ऐसा दिव्य ब्राह्म मत है।

इस मत के अनुसार वर्तुल (ॐ) बोलकर फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः जोड़कर (ॐ सोस्मितायै नमः) साधक का विकास करने वाली श्रीदेवी को योगीजन जपते हैं।

कथं हिरण्यप्राकारा ? हितं करोति रमयति च हिरण्या। प्रकृतेराकारः स्वरूपो वा प्राकारः। हितकारिणीं रमणीयां सत्त्वमूर्तिं मुनय उपासन्ते तस्माद्धिरण्यप्राकारेति दिव्यर्षिमतमनेन वर्तुलमुक्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमो योजयित्वा कामसमृद्धिदात्रीं योगिनो जपन्ति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - किस प्रकार से हिरण्यप्राकारा है ? हित करती है एवं रमण कराती है, वह हिरण्या है। प्रकृति का आकार या स्वरूप प्राकार है। हित करने वाली एवं रमणीया सत्त्वमूर्ति की मुनिजन उपासना करते हैं इसीलिए हिरण्यप्राकारा है, ऐसा दिव्यर्षिमत है। इस मत के अनुसार वर्तुल (ॐ) बोलकर फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः जोड़कर (ॐ हिरण्य-प्राकारायै नमः) कामना के अनुसार समृद्धि को देने वाली श्रीदेवी को योगीजन जपते हैं।

कथमार्द्रा ज्वलन्ती तृप्ता वा ?
समुपोषितभक्तानामशेषदोषान्द्रावयत्यारदनाद्दूरं करोति तस्मादार्द्रा। शिरस्थाधोमुखपद्मनिःसृतामृतेनार्द्रयति दययार्द्रा भवति तस्मादार्द्रा। हृदयाकाशे चेतनाशक्तिरूपेण जाज्वल्यमाना भवति स्वर्गवत्तविषवत्त्वेषति वा तस्माज्ज्वलन्ती। हरौ प्रीतिं धत्ते नान्येषु तस्मात्तृप्ता स्वभक्त्याचारैः सन्तुष्टा भवति वा तस्मात्तृप्ता। लौकिकान् भोगान् परित्यज्य ब्रह्मानन्दतृप्तिमश्नुते तस्मात्तृप्तेति दिव्यवेदपारगर्षिमतमनेन वर्तुलमुक्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमो योजयित्वा जगत्तृप्तिदात्रीं योगिनो जपन्ति।

श्रीनिग्रहाचार्यकृत-शङ्करभाष्य

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - किस प्रकार से आर्द्रा, ज्वलन्ती या तृप्ता है ? अपनी शरण में आये हुए भक्तों के सभी दोषों का द्रावण करके उन्हें उखाड़ कर दूर करती है, इसीलिए आर्द्रा है। शिर में स्थित अधोमुख वाले चक्रस्थित पद्म से निकले अमृत के द्वारा भीगती है, दया से आर्द्र होती है, इसीलिए आर्द्रा है। हृदयाकाश में चेतनाशक्ति के रूप से प्रज्ज्वलित रहती है, स्वर्ग के समान चमकती रहती है इसीलिए ज्वलन्ती है। विष्णु में प्रीति को धारण करती है, किसी और में नहीं, अथवा अपने भक्तों के आचरण से सन्तुष्ट होती है, इसीलिए तृप्ता है। लौकिक भोगों को छोड़कर ब्रह्मानन्द की तृप्ति का उपभोग करती है, इसीलिए तृप्ति है, ऐसा दिव्य वेदपारग ऋषियों का मत है। इस मत के अनुसार वर्तुल (ॐ) बोलकर फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः जोड़कर (ॐ आर्द्रायै नमः, ॐ ज्वलन्त्यै नमः, ॐ तृप्तायै नमः) विश्व को तृप्ति देने वाली श्रीदेवी को योगीजन जपते हैं।

कथं तर्पयन्ती पद्मे स्थिता पद्मवर्णा वा ? स्वगुणशीलैर्विष्णुं तर्पयति हरेर्गुणैरात्मतृप्ता भवति तस्मात्तर्पयन्ती। द्विसप्ततिसहस्रसङ्ख्यकाभिर्नाडिभिर्देहवारिधिं नदीभिरिव तर्पयति जलत्वेन धमनीरुत्प्रेर्य रसैरनिलत्वेन प्राणान् तर्पयति तस्मात्तर्पयन्ती। पद्यमानं सरिद्धारावत्प्रवहज्जगन्मिनोति तस्मात् कालः पद्मम्। कालसञ्चालनकर्मणि कालस्थिता कालरूपा कालारूढा भवति सा पद्मे स्थिता। कालपुरुषस्य पद्मस्यात्मतेजसा वर्णनं करोति तस्मादेव पद्मवर्णेति दिव्ययोगमतमनेन वर्तुलमुक्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमो योजयित्वा कालभीतिनिवारिणीं पाण्डित्यदात्रीं योगिनो जपन्ति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - किस प्रकार से तर्पयन्ती, पद्मे स्थिता या पद्मवर्णा है ? अपने गुण एवं शील से विष्णु को तृप्त करती है और विष्णु के गुणों से स्वयं

तृप्त होती है। नदी के समान बहत्तर हजार नाड़ियों से शरीररूपी समुद्र को तृप्त करती है, जलतत्त्व के समान धमनियों को प्रेरित करके रसों से वायुतत्त्व के प्राणों को तृप्त करती है, इसीलिए तर्पयन्ती है। नदी के प्रवाह के समान गतिशील जगत् को नष्ट करने से काल को पद्म कहते हैं। काल के संचालन के समय काल में स्थित होती है, कालस्वरूपा होती है और काल पर आरूढ़ रहती है, इसीलिए 'पद्मे स्थिता' है। कालपुरुषरूपी पद्म का अपने तेज से वर्णन करती है, इसीलिए पद्मवर्णा है, ऐसा दिव्य योगमत है। इस मत के अनुसार वर्तुल (ॐ) बोलकर फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः जोड़कर (ॐ तर्पयन्त्यै नमः, ॐ पद्मे स्थितायै नमः, ॐ पद्मवर्णायै नमः) काल के भय को दूर करने वाली एवं पाण्डित्य को देने वाली श्रीदेवी को योगीजन जपते हैं।

कूटवृत्तिमत्राह

कीदृशः कादिकूटानुसारं श्रीविग्रहः ? दिव्यवृत्तिवर्णने कआसओमइतहरणयपदजवलनईऋएथकूटवर्णानामाचारेण कादयो वर्णितास्तेषु आसओमइतहरणयपदजवलनईएथकूटार्थाः पूर्वप्रसङ्गेषु वर्णिताश्शेषानधुना वक्ष्ये। क्रोधीशा महाकाली प्रकाशिका कपालिनी जया परमार्थिका ब्रह्माणी माहेश्वरी रमणी मङ्गलानङ्गकुसुमेति ककूटार्थः। पूस्त्रिविक्रमा देवमाता भूतिः क्रिया शान्तिनी गणनायिका रोहिणी शिवदूतीति ऋकूटार्थः।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - कादि कूटों के अनुसार श्रीविग्रह कैसा है ? दिव्यवृत्ति के वर्णन में क-आ-स-ओ-म-इ-त-ह-र-ण-य-प-द-ज-व-ल-न-ई-ऋ-ए-थ कूट वर्णों के आचार के द्वारा कादि वर्णित हैं उनमें से आ-स-ओ-म-इ-त-ह-र-ण-य-प-द-ज-व-ल-न-ई-ए-थ कूट के अर्थों का वर्णन पूर्व के प्रसङ्गों में किया जा चुका है, शेष को अब कहता हूँ। क्रोधियों की स्वामिनी, महाकाली,

प्रकाशिका, कपालिनी, जया, परमार्थिका, ब्रह्माणी, माहेश्वरी, रमणी, मङ्गला, अनङ्गकुसुमा, ये 'क' के कूटार्थ हैं। वहन करने वाली, त्रिविक्रमा, देवताओं की माता, भूति, क्रिया, शान्तिनी, गणनायिका, रोहिणी, शिवदूती, ये 'ऋ' के कूटार्थ हैं।

तत्त्ववृत्तिमत्राह

मन्त्रस्यास्य चिक्लीतकर्दमावृषी, सर्वकामप्रदा देवता, ह्रामिति बीजम्, चूडामणिः शक्तिः, महाशक्तिर्महाविद्या, सत्त्वगुणः, नेत्रे ज्ञानेन्द्रिये, करौ कर्मेन्द्रिये, मध्यमः स्वरः, भूतत्त्वम्, प्रवृत्तिः कला, श्रीं ह्रीमित्युत्कीलनम्, मोहिनी मुद्रा भवति। ऋषेर्न्यासस्सहस्रारे शिरसि, देवतान्यासो द्वादशारे हृदि, बीजन्यासः षडारे स्वाधिष्ठाने, शक्तिन्यासो दशारे नाभौ, विद्यान्यासः षोडशारे कण्ठे, गुणन्यासो मनसि, ज्ञानेन्द्रियन्यासश्चेतसि, कर्मेन्द्रियन्यासः कर्मेन्द्रियेषु, स्वरन्यासः कण्ठमूले, तत्त्वन्यासश्चतुरारे मूलाधारे, कलान्यासः करतले, उत्कीलनन्यासः पादयोर्मुद्रान्यासस्तु सर्वाङ्गे भवत्यस्य मन्त्रस्य सौम्यरसो भवति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - श्रीसूक्त की चतुर्थ ऋचा के ऋषि चिक्लीत एवं कर्दम हैं। सर्वकामप्रदा देवता हैं तथा ह्रां बीज है। चूड़ामणि शक्ति है, इसकी महाविद्या महाशक्ति एवं इसका गुण सत्वगुण है। नेत्र इसके ज्ञानेन्द्रिय तथा हाथ इसके कर्मेन्द्रिय हैं। इसका स्वर मध्यम एवं तत्त्व पृथ्वी है। इसकी कला का नाम प्रवृत्ति है तथा श्रीं एवं ह्रीं बीज से उत्कीलन होता है। इसकी मुद्रा योनि होती है। ऋषियों का न्यास शीर्षभाग के सहस्रार चक्र में होता है। देवता का न्यास हृदय के द्वादशार अनाहत चक्र में होता है। बीज का न्यास षडार स्वाधिष्ठान में एवं शक्ति का न्यास नाभि के दशार मणिपुर चक्र में होता है। महाविद्या का न्यास कंठ के षोडशार विशुद्धि में, गुण का न्यास मन में तथा ज्ञानेन्द्रिय का न्यास चित्त में होता है। कर्मेन्द्रिय का न्यास कर्मेन्द्रियों में

होता है। स्वर का न्यास कंठ के मूल में तथा तत्त्व का न्यास चतुरार मूलाधार में होता है। कला का न्यास हथेली में तथा पैरों में उत्कीलन का न्यास होता है। मुद्रा का न्यास सभी अंगों में होता है। इस मन्त्र का रस सौम्य है।

नृसिंहवृत्तिमत्राह

श्रीसूक्तस्य चतुर्थीमृचं द्वौ नृसिंहवर्णौ सम्पुटीकृत्य रक्षतः। आदौ सूक्ष्मवरुणश्चान्ते श्वेतशिवान्वितो निर्गुणः। एवं विष्णुर्निगद्यते। अनयोर्वृत्तिं पूर्वर्चो नृसिंहवर्णाभ्यां महेति सहैव वक्ष्ये। भीषणेन वपुषा भयाद्भीतिं कारयति तस्मान्महाविष्णुः। देशकालावस्थाभिर्यो न बाध्यते स महान्। लोकोत्तरव्योम्नि महीयते पूज्यते सदसती विविनक्ति पृथक्करोतीति महाविष्णुः। सर्वेभ्योऽभीष्टं मेहति ददाति वा स्वचेष्टया सर्वान् मोहयन् सर्वेषु वेवेष्टि व्याप्तं भवति स महाविष्णुः। ब्रह्मभावे स्थितः स्वात्मरूपं मनुते जीवजगदजपानिःश्वासस्तुतो भवति स महाविष्णुः। मां श्रियं जिहीते यात्यजायमानो महान् सन् योगमायया जायमानो भवति स महाविष्णुः। अस्याधिष्ठातानिरुद्धव्यूहः। कालो ब्रह्मा वा मकारः। जीवप्राणो हकारो देहे तस्याव्यक्तगुप्ति आकारः। कार्यगतिर्वकारः। तस्य पोषणमिकारः। आदित्यवर्णेनाभयप्रदः षकारः। नियन्ता कल्याणकर्ता वा णुरित्यर्थः।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - श्रीसूक्त की चौथी ऋचा को दो नृसिंहवर्ण सम्पुटित करके रक्षा करते हैं। प्रारम्भ में सूक्ष्म (इकार) के साथ वरुण (वकार) और अन्त में श्वेत (ष्) एवं शिव (उ) से युक्त निर्गुण (णकार)। इस प्रकार से विष्णु शब्द बनता है। इनकी वृत्ति पिछली ऋचा के 'महा' के साथ जोड़कर कहता हूँ। भयानक शरीर से भय के कारण भयभीत करने से वह महाविष्णु है। देश, काल एवं अवस्था के द्वारा जो बाधित नहीं होता है, वह महान् है। इस संसार

से परे आकाश में जो प्रतिष्ठित एवं पूजित होता है, सत् एवं असत् को अलग अलग विभाजित करता है, वह महाविष्णु है। सबों को अभीष्ट वस्तु प्रदान करता है अथवा अपनी चेष्टा से सबको मोहित करता हुआ सबों में व्याप्त रहता है, वह महाविष्णु है। ब्रह्मभाव में स्थित होकर अपने स्वरूप का चिन्तन करता है, जीवमय संसार के अजपा निःश्वास के द्वारा स्तुत होता है, वह महाविष्णु है। मा अर्थात् श्री के पास जो जाता है, अथवा उसकी प्राप्ति करता है, अजन्मा होने पर भी योगमाया से अवतार लेता है, वह महाविष्णु है। इसका अधिष्ठाता अनिरुद्ध व्यूह है। काल या ब्रह्मा को मकार कहते हैं। जीव में प्राण होना हकार है और देह में उनकी गुप्त स्थिति आकार है। उसके कार्य की गति वकार है। उसका भरण पोषण इकार है। सूर्य के समान प्रकाश से अभय देने वाला षकार है। सबों पर नियन्त्रण करने वाला तथा उनका कल्याण करने वाला णुकार है, ऐसा अर्थ है।

॥इति पद्मवर्णाधिकारः ॥

--*

॥अथ चन्द्राधिकारः ॥

चन्द्रां प्रभासां यशसां (यशसा) ज्वलन्तीं
श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम् ।
तां पद्मनेमिं (पद्मिनीमीं) शरणमहं प्रपद्ये -
ऽलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणे ॥ ५ ॥

शङ्करभाष्यम्
लोकवृत्तिमत्राह
आनन्दस्वरूपिणीं प्रकृष्टसत्त्वतेजोन्वितां
विष्णोर्वामाङ्गसंस्थानसौभाग्ययशसा सहस्रसूर्याग्नितेजोवज्ज्वलन्तीं
सर्वेषामाश्रयभूतां संसारे व्यापितां शिवेन्द्रब्रह्मादिदेवैराराधितामथवा
नारायणसंयुक्तां लोकेष्टदानकर्मणा औदार्यभावयुतां करगतपद्मक्रीडया
नयनविलासकर्त्रीं पद्माख्यकालतो निवार्य जनेभ्यो मोक्षदानकर्त्रीमहं
शरण्यामिति मन्ये । तस्याग्रजां दुःसहस्याथवोद्दालकस्य
जायालक्ष्मीर्नश्यतामिति काम्यार्थः ।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - आनन्दमय स्वरूप वाली, उत्तम सत्वगुण के तेज से युक्त, विष्णु के बायें भाग में स्थित होने के सौभाग्यरूपी यश से हजारों सूर्य एवं अग्नि के समान तेज से प्रदीप्त, सबों के लिए आश्रय के समान, पूरे संसार में व्याप्त, शिव-इन्द्र-ब्रह्मा आदि देवताओं के द्वारा आराधिता अथवा नारायण से युक्त, संसार को अभीष्ट फल देने के कर्म के उदारभाव से युक्त, हाथ में पकड़े हुए कमल से खेलते हुए नेत्रों को आनन्द देने वाली, पद्म नाम वाले

काल से लोगों को हटाकर मोक्ष देने वाली को मैं अपनी शरणदात्री मानता हूँ। उनकी बड़ी बहन, जो दुःसह या उद्दालक की पत्नी हैं, जिन्हें अलक्ष्मी कहते हैं, वे नष्ट हों, ऐसी कामना का अर्थ है।

दिव्यवृत्तिमत्राह

कथं पुनश्चन्द्रा ? क्षीरोदधिमन्थने चन्द्रनाम्नी श्रियो रश्मिर्व्योम्नि गता। तस्याः कोटिकोट्यंशतेजसः सोमो नाम चन्द्रपिण्डो बभूव तस्मादेव चन्द्रेति दिव्यर्षिमतमनेन वर्तुलमुक्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमो योजयित्वा मनोनिर्मलकर्त्रीं योगिनो जपन्ति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - फिर किस प्रकार से चन्द्रा है ? क्षीरसागर के मन्थन के समय श्री का चन्द्र नामक तेज आकाश में चला गया। उसके करोड़वें के करोड़वें अंश से सोम नामक चन्द्रपिण्ड बना, इसीलिए चन्द्रा है, ऐसा दिव्य ऋषि मत है। इस मत के अनुसार वर्तुल (ॐ) बोलकर फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः बोलकर (ॐ चन्द्रायै नमः) मन को निर्मल करने वाली श्रीदेवी को योगीजन जपते हैं।

कथं प्रभासा ? यस्मात्तस्या भासो सर्वाञ्छेषान् सूर्यादीन् प्रकर्षयति, सर्वतेजसां तिरोधायका अपि तस्यास्तेजसि तिरोहिता भवन्ति तस्माद्भासमाना प्रभासा। स्वपद्भ्यां यथा शिरच्छायालङ्घ्या तथैवाप्रधृष्यत्वेन जीवेभ्योऽलङ्घ्या भवति तस्मात् प्रभासा। चिदानन्दस्वरूपिण्याः प्रभा नित्या भवति श्रद्धासोमादिभोग्यशक्तिप्रभां स्वर्गादिष्वस्यति तस्मादेव प्रभासेति दिव्यवेदपारगर्षिमतमनेन वर्तुलमुक्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमो योजयित्वा तेजोप्रदां सन्तानदाञ्च योगिनो जपन्ति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - किस प्रकार से प्रभासा है ? क्योंकि उसका प्रकाश शेष सभी सूर्य आदि प्रकाशित तत्त्वों को आकृष्ट करता है तथा सभी तेजों को तिरोहित करने वाले सूर्य आदि भी उसके तेज से स्वयं तिरोहित हो जाते हैं, इसीलिए वह प्रकाशिता प्रभासा है। जैसे अपने पैरों से शिर की छाया लांघी नहीं जा सकती, वैसे ही जिसका धर्षण न किया जा सके, जीवों के द्वारा ऐसी ही अलंघ्या होती है, इसीलिए प्रभासा है। उस चिदानन्दस्वरूपिणी की प्रभा सदैव बनी रहती है, श्रद्धासोमादि भोग्यशक्ति की प्रभा को स्वर्गादि में विस्तृत करती है, इसीलिए प्रभासा है, ऐसा दिव्य वेदपारग ऋषियों का मत है। इस मत के अनुसार पहले वर्तुल (ॐ) बोलकर फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः बोलकर (ॐ प्रभासायै नमः) तेज एवं सन्तान को देने वाली श्रीदेवी को योगीजन जपते हैं।

कथं यशसा ? लोके विद्यादानादिसत्कर्मसम्भूतेर्नाम यशः। यद्यशोऽनेकत्वेन विभज्यते या तेषामेका भोक्त्री सा यशसेति दिव्यबुधमतमनेन वर्तुलमुक्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमो योजयित्वा यशोदात्रीं योगिनो जपन्ति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - संसार में विद्यादान आदि सत्कर्मों के द्वारा जो पुण्य या सम्पदा मिलती है उसे यश कहते हैं। जिसका यश अनेकों रूपों में विभाजित है और जो उस यश की एकमात्र उपभोग करने वाली हैं, वो यशसा हैं, ऐसा दिव्य बुधमत है। इस मत के अनुसार पहले वर्तुल (ॐ) बोलकर फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः बोलकर (ॐ यशसायै नमः) यश को देने वाली श्रीदेवी को योगीजन जपते हैं।

कथं पुनर्ज्वलन्ती ? स्वर्गाग्नौ श्रद्धाप्रभां जुहोति, पर्जन्याग्नौ सोमप्रभां जुहोति, भूरग्नौ जलप्रभां जुहोति, पुरुषाग्नावन्नप्रभां जुहोति, स्त्र्यग्नौ

वीर्यप्रभां जुहोति, वैश्वानराग्नौ हविष्यप्रभां जुहोति, हविं भुञ्जाना भोग्यभोक्तृशक्तिप्रभया षोढा ज्वलन्ती अग्निषोमविभागेन लोकान् करोति तस्मादेव ज्वलन्तीति दिव्यमुनिमतमनेन वर्तुलमुक्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमो योजयित्वाभीष्टदात्रीं योगिनो जपन्ति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - स्वर्गरूपी अग्नि में श्रद्धाप्रभा का हवन करती है, पर्जन्यरूपी अग्नि में सोमप्रभा का हवन करती है, पृथ्वीरूपी अग्नि में जलप्रभा का हवन करती है, पुरुषरूपी अग्नि में अन्नप्रभा का हवन करती है, स्त्रीरूपी अग्नि में वीर्यप्रभा का हवन करती है, वैश्वानररूपी अग्नि में हविष्यप्रभा का हवन करती है और हवि का उपभोग करती हुई भोग्य एवं भोक्तृशक्ति की प्रभा से छः रूपों में जलती हुई अग्निषोम (भोक्ता एवं भोग्य) विभाग से संसार की रचना करती है, इसीलिए ज्वलन्ती है, ऐसा दिव्य मुनिमत है। इस मत के अनुसार पहले वर्तुल (ॐ) बोलकर फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः बोलकर (ॐ ज्वलन्त्यै नमः) अभीष्ट फल देने वाली श्रीदेवी को योगीजन जपते हैं।

कथं देवजुष्टा ? हरिणा देवेन प्रेमार्चिता देवैरन्यैश्च श्रद्धया सेविता जुष्टा वेन्द्रियसंश्रयरूपेण तानि विषयासक्तानि करोति तस्मादेवजुष्टा। सर्वेन्द्रियाण्यचेतनानि किन्तु देव्या विज्ञानक्रियाशक्त्या श्रवणदर्शनादिकर्मसङ्कुले प्रवृत्तानि देवीं जुषन्ति देवाञ्जयन्ति तस्मादेवजुष्टेति दिव्यैन्द्रमतमनेन वर्तुलमुक्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमो योजयित्वा सर्वशक्तिप्रदां योगिनो जपन्ति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - किस प्रकार से देवजुष्टा है ? हरिसंज्ञक देव के द्वारा प्रेम से अर्चित है, अन्य देवताओं के द्वारा भी श्रद्धा से सेवित एवं सन्तुष्ट है, अथवा

इन्द्रियों का आश्रय बनकर उन्हें विषयों में आसक्त करती है, इसीलिए देवजुष्टा है। सभी इन्द्रियाँ जड़ हैं किन्तु देवी की विज्ञानक्रियाशक्ति के कारण सुनना, देखना आदि कर्मसमूहों में प्रवृत्त होकर देवी को सुख देती हैं और देवताओं को भी जीत लेती हैं, इसीलिए देवजुष्टा है, ऐसा दिव्य ऐन्द्रमत है। इस मत के अनुसार पहले वर्तुल (ॐ) बोलकर फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः बोलकर (ॐ देवजुष्टायै नमः) सभी शक्तियों को देने वाली श्रीदेवी को योगीजन जपते हैं।

कथमुदारा ता पद्मनेमी वा ? महर्षीणां विज्ञानस्य, मानवानां लोकशक्तेः क्रियायाश्च, लोके क्रमातिक्रमोर्ध्वाधोगमनानुकूलप्रतिकूलघटनानां निमित्ता भवति तस्मादुदारा। सर्गस्थितिविसर्गनिग्रहानुग्रहसंज्ञकाः क्रियास्तनोति तायते सूयते पालयति वा व्यापिका भवति तस्मादेव ता। पदिति नेता नयनार्थे वा। नेमीति बहिर्गमनम्। प्रकृतेः पुरुषस्य चापि स्वतेजसोन्नयनं करोति तस्मात् पद्मा। जडप्रकृत्या वा पद्मसंज्ञकात् कालान्नेमीभागे बहिर्भागे तिष्ठति तस्मात्पद्मनेमी। नेमीति केन्द्रभागः। कालस्य नेम्यां स्थित्वा लोकान् कालनेम्यां प्रकर्षयति तस्मात्पद्मनेमीति दिव्यमहर्षिमतमनेन वर्तुलमुक्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमो योजयित्वा कल्याणकर्त्रीं योगिनो जपन्ति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - किस प्रकार से उदारा, 'ता' अथवा पद्मनेमी है ? महर्षियों का विज्ञान, मानवों की सांसारिक शक्ति एवं क्रिया, संसार में क्रम, अतिक्रम, ऊपर जाना, नीचे गिरना, अनुकूल एवं प्रतिकूल घटनाओं का निमित्त होती है, इसीलिए उदारा है। सृष्टि, स्थिति, प्रलय, निग्रह एवं अनुग्रह नाम वाली क्रियाओं का विस्तार करती है, उसका पालन करती है, जन्म देती है अथवा उसमें व्याप्त होती है, इसीलिए वह 'ता' है। पद का अर्थ ले जाने

वाला है। नेमि का अर्थ बाहर जाना है। प्रकृति और पुरुष का अपने तेज से उन्नयन करती है, इसीलिए पद्मा है। जड़प्रकृति अथवा पद्मनाम वाले काल के नेमिभाग अर्थात् काल के नियन्त्रण से बाहर रहती है, इसीलिए पद्मनेमी है। नेमि का अर्थ केन्द्रभाग भी है। काल के मध्य में रहकर संसार को काल के अन्दर खींचती है, इसीलिए पद्मनेमी है, ऐसा दिव्यमहर्षिमत है। इस मत के अनुसार पहले वर्तुल (ॐ) बोलकर फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः बोलकर (ॐ उदारायै नमः, ॐ तायै नमः, ॐ पद्मनेम्यै नमः) कल्याण करने वाली श्रीदेवी को योगीजन जपते हैं।

कूटवृत्तिमत्राह

कीदृशश्चन्द्रादिकूटानुसारं श्रीविग्रहः ? दिव्यवृत्तिवर्णने चनदरआपभसयशजवलतईएउषटमकूटवर्णानामाचारेण चन्द्रादयो वर्णितास्तेषु चनदरआपसयशजवलतईएउमकूटार्थाः पूर्वप्रसङ्गेषु वर्णिताश्शेषानधुना वक्ष्ये। क्लिन्ना, भ्रामरी, भीमा, विश्वमूर्तिर्भूषणा, दीप्तिस्तापिनी, विश्वरूपिणी, चन्द्रिकेति भकूटार्थः। प्रज्ञा, लज्जा, सूर्यात्मा, युद्धात्मा, सुश्रीः, श्रेष्ठा, मत्तेति षकूटार्थः। कपालिनी, सोमजा, ध्वनिर्मुकुन्दा, वैष्णवी, पुनर्भवा, प्रमदा, विमला, वारुणीति टकूटार्थः।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - चन्द्रादि कूटों के अनुसार श्रीविग्रह कैसा है ? दिव्यवृत्ति के वर्णन में च-न-द-र-आ-प-भ-स-य-श-ज-व-ल-त-ई-ए-उ-ष-ट-म कूट वर्णों के आचार के द्वारा चन्द्रादि वर्णित हैं उनमें से च-न-द-र-आ-प-स-य-श-ज-व-ल-त-ई-ए-उ-म कूट के अर्थों का वर्णन पूर्व के प्रसङ्गों में किया जा चुका है, शेष को अब कहता हूँ। क्लिन्ना, भ्रामरी, भीमा, विश्वमूर्ति, भूषणा, दीप्ति, तापिनी, विश्वरूपिणी, चन्द्रिका, ये 'भ' के कूटार्थ हैं। प्रज्ञा, लज्जा, सूर्यात्मा, युद्धात्मा, सुश्री, श्रेष्ठा, मत्ता, ये 'ष' के कूटार्थ हैं। कपालिनी, सोमजा, ध्वनि,

मुकुन्दा, वैष्णवी, पुनर्भवा (बार बार जन्म प्रकट होने वाली) प्रमदा, विमला, वारुणी, ये 'ट' के कूटार्थ हैं।

तत्त्ववृत्तिमत्राह

मन्त्रस्यास्यासितर्षिः, विष्णुर्देवता, वमिति बीजम्, मायाशक्तिः, कुमारी महाविद्या, रजोगुणः, श्रोत्रे ज्ञानेन्द्रिये, वाक्कर्मेन्द्रियम्, सौम्यस्वरः, आकाशतत्त्वम्, विद्या कला, ब्लौमित्युत्कीलनम्, द्राविणी मुद्रा भवति। ऋषेर्न्यासस्सहस्रारे शिरसि, देवतान्यासो द्वादशारे हृदि, बीजन्यासः षडारे स्वाधिष्ठाने, शक्तिन्यासो दशारे नाभौ, विद्यान्यासः षोडशारे कण्ठे, गुणन्यासो मनसि, ज्ञानेन्द्रियन्यासश्चेतसि, कर्मेन्द्रियन्यासः कर्मेन्द्रियेषु, स्वरन्यासः कण्ठमूले, तत्त्वन्यासश्चतुरारे मूलाधारे, कलान्यासः करतले, उत्कीलनन्यासः पादयोर्मुद्रान्यासस्तु सर्वाङ्गे भवत्यस्य मन्त्रस्य मृदुरसो भवति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - श्रीसूक्त की पांचवीं ऋचा के ऋषि असित हैं। विष्णु देवता हैं तथा वं बीज है। माया शक्ति है, इसकी महाविद्या कुमारी एवं इसका गुण रजोगुण है। कान इसके ज्ञानेन्द्रिय तथा वाणी इसकी कर्मेन्द्रिय है। इसका स्वर सौम्य एवं तत्त्व आकाश है। इसकी कला का नाम विद्या है तथा ब्लौं बीज से उत्कीलन होता है। इसकी मुद्रा द्राविणी होती है। ऋषियों का न्यास शीर्षभाग के सहस्रार चक्र में होता है। देवता का न्यास हृदय के द्वादशार अनाहत चक्र में होता है। बीज का न्यास षडार स्वाधिष्ठान में एवं शक्ति का न्यास नाभि के दशार मणिपुर चक्र में होता है। महाविद्या का न्यास कंठ के षोडशार विशुद्धि में, गुण का न्यास मन में तथा ज्ञानेन्द्रिय का न्यास चित्त में होता है। कर्मेन्द्रिय का न्यास कर्मेन्द्रियों में होता है। स्वर का न्यास कंठ के मूल में तथा तत्त्व का न्यास चतुरार मूलाधार में होता है। कला का न्यास

हथेली में तथा पैरों में उत्कीलन का न्यास होता है। मुद्रा का न्यास सभी अंगों में होता है। इस मन्त्र का रस मृदु है।

नृसिंहवृत्तिमत्राह

श्रीसूक्तस्य पञ्चमीमृचं द्वौ नृसिंहवर्णौ सम्पुटीकृत्य रक्षतः। आदौ शवान्वितो वकारश्चान्ते चन्द्रः। एवं ज्वल इति निगद्यते। अनयोर्वृत्तिमग्रे षष्ठ्यामृचि व्याख्यास्यामः।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - श्रीसूक्त की पांचवीं ऋचा को दो नृसिंहवर्ण सम्पुटित करके रक्षा करते हैं। प्रारम्भ में शव (ज) से युक्त वकार और अन्त में चन्द्र (लकार)। इस प्रकार ज्वल शब्द बनता है। इन दोनों की वृत्ति आगे छठी ऋचा में कहेंगे।

॥इति चन्द्राधिकारः॥

--*

॥अथ बिल्वाधिकारः ॥

आदित्यवर्णे तपसोऽधिजातो वनस्पतिस्तवं वृक्षोऽथ बिल्वः ।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु मायान्तरायाश्च बाह्या अलक्ष्मीः ॥ ६ ॥

शङ्करभाष्यम्

लोकवृत्तिमत्राह

तमसानवरोधितस्वरूपादित्यवर्णा । शमदमादितपश्चर्यया तस्या मङ्गलकारिणो रूपस्य दर्शनं सम्भवति । तपोमानिन्या लक्ष्म्याः स्तनत उत्पन्नो बिल्वः श्रियो वनस्पतिः । बिल्वस्य तपोमयानि फलानि मायाजन्यान्तरायान् विघ्नान्नाशयन्तु । या पूर्वोक्तालक्ष्मीर्ज्येष्ठालक्ष्मीर्वा सा मम जीवनाद्बहिष्कृता भवेदित्यर्थः ।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - जिसका स्वरूप तमस् से अवरुद्ध न हो वह आदित्य-वर्णा है । शम-दमादि तपस्या के आचरण के द्वारा उसके मङ्गलकारी रूप का दर्शन सम्भव होता है । तपस्या करने वाली लक्ष्मी के स्तनों से उत्पन्न बिल्व को लक्ष्मी का वनस्पति कहा गया है । बिल्व के तपस्यायुक्त फल, माया से उत्पन्न विघ्नों का नाश करें । पहले जो अलक्ष्मी या ज्येष्ठालक्ष्मी बतायी गयी है, वह मेरे जीवन से बहिष्कृत हो, ऐसा अर्थ है ।

दिव्यवृत्तिमत्राह

कथमादित्यवर्णा ? देवपितृमनुष्याणामतीतानागतदर्शिके चक्षुषी भवति तस्मादादित्यसंज्ञिका । वर्ण इत्यक्षरं तेजो वा । पूर्वदिव्यमतवर्णितेन तेजसा

यशसा श्रिया चादित्यं वर्णवन्तं तेजोवन्तं करोत्यथवादित्यसंस्थिता वर्णाक्षररूपिणी त्रयीमयी भवति तस्मादादित्यवर्णा। यस्या आद्यक्षरं तारः प्रणवो भवति, यस्मिन्निवसन्ती गुणसाम्यकाले शान्ता भवति, बृंहणकाले उदिता भवति, सृष्टिस्थितिप्रलयकालेष्वानन्दा भवति, प्रणवस्य तैलधारावच्छिन्नप्रवाहा सूक्ष्मशिखा घण्टानिनादिनी यस्याः शब्दब्रह्मात्मकः सूक्ष्मविग्रहो भवति, यस्यामवगाहनकर्तादित्यवर्णो भूत्वा श्रियमधिगच्छति सादित्यवर्णा। आदित्यसन्निभा वैखरी भूत्वा शब्दवर्णप्रकाशं तनोति तस्मादादित्यवर्णेति दिव्यर्षिमतमनेन वर्तुलमुक्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमो योजयित्वा कामदात्रीं योगिनो जपन्ति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - किस प्रकार से आदित्यवर्णा है ? देवता, पितृगण एवं मनुष्यों के भूत एवं भविष्य को दिखाने वाले नेत्रों के समान है, इसीलिए आदित्य कहलाती है। वर्ण का अर्थ अक्षर या तेज है। पूर्व के दिव्य मतों में वर्णित तेज, यश और श्री के द्वारा आदित्य को तेजस्वी बनाती है अथवा आदित्य में स्थित होकर वर्णाक्षररूप से वेदस्वरूपिणी होती है, इसीलिए आदित्यवर्णा है। जिसका आदि अक्षर तार या प्रणव (ॐ) होता है, जिस (प्रणव) में निवास करती हुई, गुणों की साम्यावस्था में शान्ता होती है, विस्तारकाल में उदिता होती है एवं सृष्टि-स्थिति-प्रलयकाल में आनन्दा होती है, प्रणव की तेल की धारा के समान निरन्तर होने वाली सूक्ष्म शिखा, जो घण्टा के समान ध्वनि करती है, जिसका ऐसा शब्दब्रह्मात्मक सूक्ष्मविग्रह होता है, जिसमें स्नान करने वाला साधक आदित्यवर्ण वाला होकर श्रीदेवी को प्राप्त कर जाता है, वह आदित्यवर्णा है। आदित्य के समान तेजोमयी वैखरी होकर शब्दवर्ण के प्रकाश का विस्तार करती है, इसीलिए आदित्यवर्णा है, ऐसा दिव्य ऋषिमत है। इस मत के अनुसार पहले वर्तुल (ॐ) बोलकर फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः बोलकर (ॐ आदित्यवर्णायै नमः) कामनाओं

को देने वाली श्रीदेवी को योगीजन जपते हैं।

कूटवृत्तिमत्राह

कीदृश आदित्यवर्णाकूटानुसारं श्रीविग्रहः ? दिव्यवृत्तिवर्णने आदइतयवरणकूटवर्णानामाचारेणादित्यवर्णा वर्णितास्ते सर्वे कूटार्थाः पूर्वप्रसङ्गेषु निरूपिताः।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - आदित्यवर्णा कूट के अनुसार श्रीविग्रह कैसा है ? दिव्यवृत्ति के वर्णन में आ-द-इ-त-य-व-र-ण कूट वर्णों के आचार के द्वारा आदित्यवर्णा वर्णित है, उन सभी कूटों के अर्थ का वर्णन पूर्व के प्रसङ्गों में किया जा चुका है।

तत्त्ववृत्तिमत्राह

मन्त्रस्यास्य ब्रह्मर्षिः, सूर्यो देवता, ॐ बीजम्, तेजश्शक्तिः, मातङ्गी महाविद्या, तमोगुणः, नेत्रे ज्ञानेन्द्रिये, करौ कर्मेन्द्रिये, मृदुस्वरः, आकाशतत्त्वम्, पराशान्तिः कला, ह्रीमित्युत्कीलनम्, सम्पुटमुद्रा भवति। ऋषेर्न्यासस्सहस्रारे शिरसि, देवतान्यासो द्वादशारे हृदि, बीजन्यासः षडारे स्वाधिष्ठाने, शक्तिन्यासो दशारे नाभौ, विद्यान्यासः षोडशारे कण्ठे, गुणन्यासो मनसि, ज्ञानेन्द्रियन्यासश्चेतसि, कर्मेन्द्रियन्यासः कर्मेन्द्रियेषु, स्वरन्यासः कण्ठमूले, तत्त्वन्यासश्चतुरारे मूलाधारे, कलान्यासः करतले, उत्कीलनन्यासः पादयोर्मुद्रान्यासस्तु सर्वाङ्गे भवत्यस्य मन्त्रस्य मृदुरसो भवति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - श्रीसूक्त की छठी ऋचा के ऋषि ब्रह्मा हैं। सूर्य देवता हैं तथा ॐ बीज है। तेज शक्ति है, इसकी महाविद्या मातङ्गी एवं इसका गुण तमोगुण है। नेत्र इसके ज्ञानेन्द्रिय तथा हाथ इसके कर्मेन्द्रिय हैं। इसका स्वर मृदु एवं तत्त्व आकाश है। इसकी कला का नाम पराशान्ति है तथा ह्रीं बीज से

उत्कीलन होता है। इसकी मुद्रा सम्पुट होती है। ऋषियों का न्यास शीर्षभाग के सहस्रार चक्र में होता है। देवता का न्यास हृदय के द्वादशार अनाहत चक्र में होता है। बीज का न्यास षडार स्वाधिष्ठान में एवं शक्ति का न्यास नाभि के दशार मणिपुर चक्र में होता है। महाविद्या का न्यास कंठ के षोडशार विशुद्धि में, गुण का न्यास मन में तथा ज्ञानेन्द्रिय का न्यास चित्त में होता है। कर्मेन्द्रिय का न्यास कर्मेन्द्रियों में होता है। स्वर का न्यास कंठ के मूल में तथा तत्त्व का न्यास चतुरार मूलाधार में होता है। कला का न्यास हथेली में तथा पैरों में उत्कीलन का न्यास होता है। मुद्रा का न्यास सभी अंगों में होता है। इस मन्त्र का रस मृदु है।

नृसिंहवृत्तिमत्राह

श्रीसूक्तस्य षष्ठीमृचं द्वौ नृसिंहवर्णौ सम्पुटीकृत्य रक्षतः। आदौ गर्जिनीयुतस्तकारश्चान्ते सकारः। एवं ज्वलन्तान्तः सर्वतोमुखादिश्च निगद्यते। एषां वृत्तिं पूर्वर्चो नृसिंहवर्णाभ्यां ज्वल इति सहैव वक्ष्यामहे किन्तु सकारस्य वृत्तिमष्टम्यामृचि व्याख्यास्यामः। योगिनां हृदये मुमुक्षूणां परमपदे विप्राणां मण्डपे संस्थावे वा यत्प्रज्ज्वलति तज्ज्वलन्तं ज्वलद्वा। कालरूपेण जगद्ग्रसन् ज्ञानविग्रहेण ज्वलति, सोमसूर्याग्निमण्डले तेजोरूपेण प्रविशति तज्ज्वलन्तं ज्वलद्वा। चैतन्यमिति ज्वलत्। ज्वलन्तेन कर्तृभावस्थितो जीवः। मायाबद्धो जीवः क्लेशैर्ज्वलति ज्ञानपिपासया वा तृष्यति, पुनर्ब्रह्मबोधेन प्रबुद्ध्यते देदीप्यमानो भवति तस्माज्ज्वलन्तं ज्वलद्वा। श्वासमिन्द्रियं विजित्याजितो भूत्वान्तर्ज्वलति सर्वतः प्रसरति तस्माज्ज्वलन्तं ज्वलद्वा। महाविष्णोः संविद्धनत्वमिति ज्वलत्। ब्रह्माण्डमध्ये वैभवमाश्रित्य विकसन्नवतरति तस्माज्ज्वलन्तं ज्वलद्वा। अस्याधिष्ठातारः पद्मनाभाख्याजिताद्येकादशावताराः। अजितश्च कान्तात्मको वामृतधारकश्चार्णवशायी शक्तीशो हरिर्वा नरः कृष्णो वा

नारायणश्च धरेशोऽनन्तः कूर्मो विद्याधिदेवः कालनेमिघ्नाख्यः पुरुषोत्तमः।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - श्रीसूक्त की छठी ऋचा को दो नृसिंहवर्ण सम्पुटित करके रक्षा करते हैं। प्रारम्भ में गर्जिनी (न) के साथ तकार और अन्त में सकार। इस प्रकार से ज्वलन्त का अन्त (न्त) एवं सर्वतोमुख का आदि (स) शब्द बनता है। इनकी वृत्ति पिछली ऋचा के 'ज्वल' के साथ जोड़कर कहता हूँ किन्तु सकार की वृत्ति आठवीं ऋचा में कहेंगे। योगियों के हृदय में, मोक्ष की कामना करने वालों के परमपद में, ब्राह्मणों के यज्ञमण्डप में जो प्रज्वलित होता है, वह ज्वलन्त या ज्वलत् है। कालरूप से संसार का भक्षण करता हुआ ज्ञानरूपी शरीर से जलता है, चन्द्रमा, सूर्य एवं अग्नि में मण्डल में तेजोमय रूप से प्रविष्ट होकर जलता है, वह ज्वलन्त या ज्वलत् है। चैतन्य का अर्थ ज्वलत् शब्द से लिया जाता है। ज्वलन्त का अर्थ कर्ताभाव में स्थित जीव है। माया में बंधा हुआ जीव कष्ट से जलता रहता है, ज्ञान की प्यास से व्याकुल रहता है, फिर ब्रह्मबोध से प्रबुद्ध होकर देदीप्यमान हो जाता है, इसीलिए ज्वलन्त या ज्वलत् है। श्वास एवं इन्द्रिय को जीत कर, स्वयं अजेय रहते हुए जो अन्दर ही अन्दर प्रकाशित होता है और सर्वत्र विस्तृत होता है वह ज्वलन्त या ज्वलत् है। महाविष्णु का ज्ञान से पूर्ण विग्रह ही ज्वलत् शब्द से जाना जाता है। ब्रह्माण्ड के बीच में अपने वैभव का आश्रय लेकर विकसित होता हुआ अवतार लेता है इसीलिए ज्वलन्त या ज्वलत् है। इसके अधिष्ठाता पद्मनाभसंज्ञक अजित आदि ग्यारह अवतार हैं। अजित, कान्तात्मक अथवा अमृतधारक, अर्णवशायी, शक्तीश, हरि या नर, कृष्ण या नारायण, धरेश, अनन्त, कूर्म, विद्याधिदेव, और कालनेमि को मारने वाले पुरुषोत्तम, ये ग्यारह अवतार हैं।

॥इति बिल्वाधिकारः॥

--*

श्रीनिग्रहाचार्यकृत-शङ्करभाष्य

॥अथ राष्ट्राधिकारः ॥

उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह।
प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन् कीर्तिमृद्धिं ददातु मे ॥ ७ ॥

शङ्करभाष्यम्

लोकवृत्तिमत्राह

त्वत्कृपया लक्ष्मीकृपयास्मिन् क्षेत्रे देशे देहे वा प्रबुद्धोऽस्मि। देवमित्रो वायुर्दशप्राणरूपी यशोविजयादिकीर्तिभिर्मणिप्रभृतिसम्पत्या सह मां विन्देदित्यर्थः।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - तुम्हारी कृपा से, लक्ष्मी की कृपा से, मैं इस क्षेत्र में, अर्थात् देश या देह में प्रबुद्ध हूँ। देवताओं के मित्र, दस प्राणों का स्वरूप धारण करने वाले वायु यश, विजय आदि कीर्ति एवं मणि आदि सम्पत्ति के साथ मुझे प्राप्त करें, ऐसा अर्थ है।

दिव्यवृत्तिमत्राह

कथं कीर्तिः ? लोके वायुना सह किरणान् किरन्ती मूलाधाराग्निना परापश्यन्तीमध्यमावैखरीरुत्तरोत्तरक्रमेण किरन्ती शनैश्शनैर्द्वादशारमतिक्रामति तस्मादेव कीर्तिरिति दिव्यमुनिमतमनेन वर्तुलमुत्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमो योजयित्वा योगिमलनाशकर्त्रीं योगिनो जपन्ति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - किस प्रकार से कीर्ति है ? संसार में वायु के साथ

किरणों का विस्तार करती हुई मूलाधार की अग्नि से परा-पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरी को उत्तरोत्तर क्रम से फैलाती हुई धीरे धीरे द्वादशार (अनाहत) का अतिक्रमण करती है, इसीलिए कीर्ति है, ऐसा दिव्य मुनिमत है। इस मत के अनुसार पहले वर्तुल (ॐ) बोलकर फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः बोलकर (ॐ कीर्त्यै नमः) योगियों के मल का नाश करने वाली श्रीदेवी को योगीजन जपते हैं।

कथमृद्धिः ? योगिनां चित्तमर्धयत्याह्लादयति वा हरेर्गुणान् वर्द्धयति तस्य गुणैर्वा वर्द्धते तस्माद्दृद्धिः। आधारपद्मपटलेषूत्तरोत्तरक्रमेण वर्द्धते योगवृद्धानां योगबलस्य विस्तृतिं करोति तस्माद्दृद्धिरिति दिव्ययोगमतमनेन वर्तुलमुक्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमो योजयित्वा योगदीपिनीं योगिनो जपन्ति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - किस प्रकार से ऋद्धि है ? योगियों के चित्त को समृद्ध या प्रसन्न करती है, विष्णु के गुणों को बढ़ाती है अथवा उनके गुणों से स्वयं वृद्धि को प्राप्त होती है, इसीलिए ऋद्धि है। आधारचक्रादि पद्मपटलों में उत्तरोत्तर क्रम से बढ़ती है, योग में जो परिपक्व हो चुके हैं, उनके योगबल का विस्तार करती है, इसीलिए ऋद्धि है, ऐसा दिव्य योगमत है। इस मत के अनुसार पहले वर्तुल (ॐ) बोलकर फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः बोलकर (ॐ ऋद्ध्यै नमः) योग को प्रदीप्त करने वाली श्रीदेवी को योगीजन जपते हैं।

कूटवृत्तिमत्राह

कीदृशः कीर्त्यादिकूटानुसारं श्रीविग्रहः ? दिव्यवृत्तिवर्णने कईरतइऋदधकूटवर्णानामाचारेण कीर्त्यादयो वर्णितास्ते सर्वे कूटार्थाः पूर्वप्रसङ्गेषु निरूपिताः।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - कीर्ति आदि कूटों के अनुसार श्रीविग्रह कैसा है ? दिव्यवृत्ति के वर्णन में क-ई-र-त-इ-ऋ-द-ध कूट वर्णों के आचार से कीर्ति आदि वर्णित हैं, उन सभी कूटों के अर्थ का वर्णन पूर्व के प्रसङ्गों में किया जा चुका है।

तत्त्ववृत्तिमत्राह

मन्त्रस्यास्य मृकण्ड ऋषिः, सर्वसम्पत्तिपूरणी देवता, सौमिति बीजम्, शिवाशक्तिः, मातङ्गी महाविद्या, तमोगुणः, रसना ज्ञानेन्द्रियम्, करौ कर्मेन्द्रिये, मध्यमः स्वरः, जलतत्त्वम्, प्रतिष्ठा कला, ऐमित्युत्कीलनम्, राजसी मुद्रा भवति। ऋषेर्न्यासस्सहस्रारे शिरसि, देवतान्यासो द्वादशारे हृदि, बीजन्यासः षडारे स्वाधिष्ठाने, शक्तिन्यासो दशारे नाभौ, विद्यान्यासः षोडशारे कण्ठे, गुणन्यासो मनसि, ज्ञानेन्द्रियन्यासश्चेतसि, कर्मेन्द्रियन्यासः कर्मेन्द्रियेषु, स्वरन्यासः कण्ठमूले, तत्त्वन्यासश्चतुरारे मूलाधारे, कलान्यासः करतले, उत्कीलनन्यासः पादयोर्मुद्रान्यासस्तु सर्वाङ्गे भवत्यस्य मन्त्रस्य मृदुरसो भवति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - श्रीसूक्त की सातवीं ऋचा के ऋषि मृकण्ड हैं। सर्व-सम्पत्तिपूरणी देवता हैं तथा सौं बीज है। शिवा शक्ति है, इसकी महाविद्या मातङ्गी एवं इसका गुण तमोगुण है। रसना इसकी ज्ञानेन्द्रिय तथा हाथ इसके कर्मेन्द्रिय हैं। इसका स्वर मध्यम एवं तत्त्व जल है। इसकी कला का नाम प्रतिष्ठा है तथा ऐं बीज से उत्कीलन होता है। इसकी मुद्रा राजसी होती है। ऋषियों का न्यास शीर्षभाग के सहस्रार चक्र में होता है। देवता का न्यास हृदय के द्वादशार अनाहत चक्र में होता है। बीज का न्यास षडार स्वाधिष्ठान में एवं शक्ति का न्यास नाभि के दशार मणिपुर चक्र में होता है। महाविद्या का

न्यास कंठ के षोडशार विशुद्धि में, गुण का न्यास मन में तथा ज्ञानेन्द्रिय का न्यास चित्त में होता है। कर्मेन्द्रिय का न्यास कर्मेन्द्रियों में होता है। स्वर का न्यास कंठ के मूल में तथा तत्त्व का न्यास चतुरार मूलाधार में होता है। कला का न्यास हथेली में तथा पैरों में उत्कीलन का न्यास होता है। मुद्रा का न्यास सभी अंगों में होता है। इस मन्त्र का रस मृदु है।

नृसिंहवृत्तिमत्राह

श्रीसूक्तस्य सप्तमीमृचं द्वौ नृसिंहवर्णौ सम्पुटीकृत्य रक्षतः। आदौ वह्नियुतो वरुणश्चान्ते सत्यान्वितस्तकारः। एवं 'र्वतो' निगद्यते।
तयोर्वृत्तिमग्रेऽष्टम्यामृचि व्याख्यास्यामः।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - श्रीसूक्त की सातवीं ऋचा को दो नृसिंहवर्ण सम्पुटित करके रक्षा करते हैं। प्रारम्भ में वह्नि (र) से युक्त वरुण (वकार) और अन्त में सत्य (ओकार) से युक्त तकार। इस प्रकार र्वतो शब्द बनता है। उन दोनों की वृत्ति आगे आठवीं ऋचा में कहेंगे।

॥इति राष्ट्राधिकारः॥

--*

॥अथ नाशाधिकारः ॥

क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम्।
अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात् ॥ ८॥

शङ्करभाष्यम्

लोकवृत्तिमत्राह

जलान्नस्याभावकारिणीमपवित्रताश्रितां ज्येष्ठासंज्ञिकामलक्ष्मीं हिनोमि।
ममालयादभूतिं लौकिकैश्वर्यबाधिकामसमृद्धिं धनहीनताकारिणं
दारिद्र्यञ्च निष्कासय।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - जल एवं अन्न के अभाव को करने वाली, अपवित्रता का आश्रय लेकर वास करने वाली, ज्येष्ठा नाम वाली अलक्ष्मी का मैं नाश करता हूँ। मेरे घर से सांसारिक ऐश्वर्य को बाधित करने वाली अभूति, धन-हीनता को देने वाली असमृद्धि एवं दरिद्रता को भी बाहर निकालो।

अभावमत्राह

सिद्धयोगिन्या पद्मिनीदेव्या निग्रहाय मन्त्रस्यास्य दिव्यवृत्तिर्न प्रकाशिता।
न केवलं निग्रहायापित्विन्द्रादिभ्योऽपि पुरा श्रिया नोक्ता।
निग्रहो नैव जानाति न जानन्ति सुरेश्वराः।
ऋषयोऽपि न जानन्ति शेषाणां का कथा भवेत् ?
दिव्यवृत्तेरभावात्कूटवृत्तेरभावस्तस्मादप्रकाशिता।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - सिद्धयोगिनी पद्मिनी देवी के द्वारा निग्रहाचार्य के लिए

इस मन्त्र की दिव्यवृत्ति प्रकाशित नहीं की गयी है। केवल निग्रहाचार्य के साथ ही ऐसा नहीं है, पूर्वकाल में इन्द्र आदि के लिए भी लक्ष्मी के द्वारा इसे नहीं कहा गया है। इसे निग्रहाचार्य नहीं जानते हैं, बड़े बड़े देवता नहीं जानते हैं, ऋषिगण भी नहीं जानते हैं, फिर शेषजनों की क्या बात करें ! दिव्यवृत्ति के अभाव में कूटवृत्ति का भी अभाव है, इसीलिए उसका भी वर्णन नहीं किया गया है।

तत्त्ववृत्तिमत्राह

मन्त्रस्यास्य नारद ऋषिः, सर्वसौभाग्यदायिनी देवता, सामिति बीजम्, ऐश्वर्यशक्तिः, लक्ष्मीर्महाविद्या, रजोगुणः, नेत्रे ज्ञानेन्द्रिये, भगः कर्मेन्द्रियम्, सौम्यस्वरः, भूतत्त्वम्, प्रवृत्तिः कला, ह्रीमित्युत्कीलनम्, सम्पुटमुद्रा भवति। ऋषेर्न्यासस्सहस्रारे शिरसि, देवतान्यासो द्वादशारे हृदि, बीजन्यासः षडारे स्वाधिष्ठाने, शक्तिन्यासो दशारे नाभौ, विद्यान्यासः षोडशारे कण्ठे, गुणन्यासो मनसि, ज्ञानेन्द्रियन्यासश्चेतसि, कर्मेन्द्रियन्यासः कर्मेन्द्रियेषु, स्वरन्यासः कण्ठमूले, तत्त्वन्यासश्चतुरारे मूलाधारे, कलान्यासः करतले, उत्कीलनन्यासः पादयोर्मुद्रान्यासस्तु सर्वाङ्गे भवत्यस्य मन्त्रस्य मोहरसो भवति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - श्रीसूक्त की आठवीं ऋचा के ऋषि नारद हैं। सर्व-सौभाग्यदायिनी देवता हैं तथा सां बीज है। ऐश्वर्यशक्ति है, इसकी महाविद्या लक्ष्मी एवं इसका गुण रजोगुण है। नेत्र इसके ज्ञानेन्द्रिय तथा भग इसकी कर्मेन्द्रिय है। इसका स्वर सौम्य एवं तत्त्व पृथ्वी है। इसकी कला का नाम प्रवृत्ति है तथा ह्रीं बीज से उत्कीलन होता है। इसकी मुद्रा सम्पुट होती है। ऋषियों का न्यास शीर्षभाग के सहस्रार चक्र में होता है। देवता का न्यास हृदय के द्वादशार अनाहत चक्र में होता है। बीज का न्यास षडार स्वाधिष्ठान में एवं शक्ति का न्यास नाभि के दशार मणिपुर चक्र में होता है। महाविद्या का

न्यास कंठ के षोडशार विशुद्धि में, गुण का न्यास मन में तथा ज्ञानेन्द्रिय का न्यास चित्त में होता है। कर्मेन्द्रिय का न्यास कर्मेन्द्रियों में होता है। स्वर का न्यास कंठ के मूल में तथा तत्त्व का न्यास चतुरार मूलाधार में होता है। कला का न्यास हथेली में तथा पैरों में उत्कीलन का न्यास होता है। मुद्रा का न्यास सभी अंगों में होता है। इस मन्त्र का रस मोह है।

नृसिंहवृत्तिमत्राह

श्रीसूक्तस्याष्टमीमृचं द्वौ नृसिंहवर्णौ सम्पुटीकृत्य रक्षतः। आदौ शिवान्वितो मकारश्चान्ते खकारः। एवं मुखं निगद्यते। अनयोर्वृत्तिं पूर्वर्चोर्नृसिंहवर्णैः 'सर्वतो' शब्देन सहैव वक्ष्ये। मुखमिति शक्तिः। शक्तिर्यस्य सर्वतः स्थिता स सर्वशक्तिमान् सर्वतोमुखः। मुखमिति वेदज्ञानमारम्भश्च। यः सर्वं वेत्ति सर्वज्ञानमयोऽस्ति, सर्वेषामादिकारणमस्ति स सर्वतोमुखः। कार्मिककायिकाणविकमलेभ्यस्सर्वतो विरतस्स सर्वतोमुखः। नानायोनिष्ववतारकर्मणि दक्षः सर्वतोमुखः। अस्याधिष्ठातारः पीयूषहरणादयो दशावताराः। पीयूषहरणः श्रीपतिर्वराहः पातालशायी वागीश्वरस्त्रिविक्रमो विश्वरूपो बडवावक्त्रो वौर्वाग्निर्वोदनमर्दनो वामनो वेदवित्तथा।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - श्रीसूक्त की आठवीं ऋचा को दो नृसिंहवर्ण सम्पुटित करके रक्षा करते हैं। प्रारम्भ में शिव (उ) के साथ मकार और अन्त में खकार। इस प्रकार से मुख शब्द बनता है। इनकी वृत्ति पिछली ऋचाओं के 'सर्वतो' के साथ जोड़कर कहता हूँ। मुख का अर्थ शक्ति है। जिसकी शक्ति सर्वत्र स्थित है, वह सर्वशक्तिमान् सर्वतोमुख है। मुख का अर्थ वेद का ज्ञान एवं आरम्भ है। जो सब कुछ जानता है, सभी प्रकार के ज्ञान से पूर्ण है, सबों की उत्पत्ति का कारण है, वह सर्वतोमुख है। कर्म, शरीर एवं अणुजन्य त्रिविध

मलों से जो सभी ओर से निवृत्त है, वह सर्वतोमुख है। विभिन्न योनियों में अवतार लेने के कर्म में जो निपुण है, वह सर्वतोमुख है। इसके अधिष्ठाता पीयूषहरण आदि दस अवतार हैं। पीयूषहरण, श्रीपति, वराह, पातालशायी, वागीश्वर, त्रिविक्रम, विश्वरूप, बडवावक्र अथवा और्व नाम की अग्नि अथवा ओदनमर्दन, वामन, और वेदवित्, ये दस अवतार हैं।

॥इति नाशाधिकारः ॥

--*

॥अथ गन्धाधिकारः ॥

गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्।
ईश्वरीꣳ सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥ ९॥

शङ्करभाष्यम्

लोकवृत्तिमत्राह

गन्धपुष्पमाल्यधूपादिभिर्महालक्ष्मीमप्रतिहतवीर्यां अवस्थादेशकालविक्षेपप्रभावैरबाधितां सर्वदैकरूपपुष्टां लोकान्लोकपालान्वाकर्षयन्तीं ब्रह्मणो दशविधां सृष्टिमीश्वरत्वेन शासयन्तीं नियन्त्रयन्तीं पूर्वोक्तगुणशीलसम्पन्नां श्रीसंज्ञिकां लक्ष्मीमत्रावाहये।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - किसी से पराजित न होने वाले पराक्रम से युक्त, महालक्ष्मी, जो देश-स्थान-काल के विक्षेपादि प्रभाव से बाधित नहीं होती हैं, और सदा एक समान पुष्ट रहती हैं, लोक एवं लोकपालों का आकर्षण करती हुई ब्रह्मा की दस प्रकार की सृष्टि का ईश्वरत्व की भावना से शासन और नियन्त्रण करती हुई, पहले कहे गए गुण एवं शील से सम्पन्न श्री-संज्ञा वाली लक्ष्मी का मैं गन्ध, पुष्प, माला, धूप आदि के द्वारा यहां आवाहन करता हूँ।

दिव्यवृत्तिमत्राह

कथं गन्धद्वारा ? गन्धशब्दात्तन्मात्राणां सङ्केतः। तन्मात्राः प्रकृतेर्बोधस्य द्वाररूपाणां पञ्चमहाभूतानां ज्ञानेन्द्रियाणां वाधाराः सन्ति, तेषामपि या द्वारभूता सा गन्धद्वारेति दिव्यब्राह्मणमतमनेन वर्तुलमुक्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमो योजयित्वा पुण्यदात्रीं योगिनो जपन्ति।

श्रीनिग्रहाचार्यकृत-शङ्करभाष्य

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - किस प्रकार से गन्धद्वारा है ? गन्ध शब्द से रूप आदि सभी तन्मात्राओं का सङ्केत है। तन्मात्रा, प्रकृति का बोध कराने में द्वार के समान, पञ्चमहाभूत एवं ज्ञानेन्द्रियों के आधार के समान हैं, उन तन्मात्राओं की भी जो द्वार के समान है, वह गन्धद्वारा है, ऐसा दिव्य ब्राह्मणमत है। इस मत के अनुसार पहले वर्तुल (ॐ) बोलकर फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः बोलकर (ॐ गन्धद्वारायै नमः) पुण्य को देने वाली श्रीदेवी को योगीजन जपते हैं।

कथं दुराधर्षा ? दैत्यदानवैरजेयास्ति शुद्धज्ञानक्रियाशक्तिरस्ति सर्वेषामात्मरूपा संविच्छक्त्याप्रतिहतास्ति तस्मादुराधर्षेति दिव्यसाङ्ख्यमतमनेन वर्तुलमुक्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमो योजयित्वाज्ञाननाशकर्त्रीं योगिनो जपन्ति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - किस प्रकार से दुराधर्षा है ? दैत्य एवं दानवों के लिए अजेया है। शुद्ध ज्ञान की क्रियाशक्ति वाली है, सबों की आत्मशक्ति है, उसकी ज्ञानशक्ति के कारण उसका प्रतीकार सम्भव नहीं है, इसीलिए दुराधर्षा है, ऐसा दिव्य सांख्यमत है। इस मत के अनुसार पहले वर्तुल (ॐ) बोलकर फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः बोलकर (ॐ दुराधर्षायै नमः) अज्ञान का नाश करने वाली श्रीदेवी को योगीजन जपते हैं।

कथं नित्यपुष्टा ? विषयेण हीनापि क्षीणतां न याति, नित्यविग्रहस्य हरेस्तेजसा तज्ज्ञानशक्त्या वा पुष्टा भवति, चिन्मयं देहं सन्धार्य चेतनया जडान् विषयान् पोषयति तस्मान्नित्यपुष्टेति दिव्यज्ञानमतमनेन वर्तुलमुक्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमो योजयित्वा ज्ञानदात्रीं योगिनो जपन्ति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - किस प्रकार से नित्यपुष्टा है ? विषयों से हीन होकर भी क्षीणता को प्राप्त नहीं होती है, अविनाशी विग्रह वाले श्रीहरि के तेज अथवा ज्ञानशक्ति से पुष्ट होती है, चिन्मय देह को धारण करके अपनी चेतना से जड़ विषयों का पोषण करती है, इसीलिए नित्यपुष्टा है, ऐसा दिव्य ज्ञानमत है। इस मत के अनुसार पहले वर्तुल (ॐ) बोलकर फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः बोलकर (ॐ नित्यपुष्टायै नमः) ज्ञान को देने वाली श्रीदेवी को योगीजन जपते हैं।

कथङ्करीषिणी ? करीति कर्ता। कायिकवाचिकमानसिकरूपेण शुद्धिभूतान् यज्ञदानाध्ययनकर्मणि निरतान्विप्रानीषते तानभीक्षते तस्मात्करीषिणी। करीति गजः। दिव्यगजेन्द्रैरभिवृता तानारोहन्ती सृष्टिं करोति वा सृष्टङ्करोति तस्मात्करीषिणीति दिव्यतत्त्वमतमनेन वर्तुलमुक्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमो योजयित्वा काम्यसिद्धिदात्रीं योगिनो जपन्ति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - किस प्रकार से करीषिणी है ? करी का अर्थ 'करने वाला' है। शरीर, वाणी एवं मन से शुद्धि को प्राप्त करके यज्ञ, दान एवं अध्ययनकर्म में लगे हुए ब्राह्मणों को देखती है, तथा उनकी अभिलाषा करती है, इसीलिए करीषिणी है। करी का अर्थ हाथी है। अलौकिक हाथियों से घिरी हुई, उनके ऊपर सवार होकर संसार की रचना करती है अथवा इस संसार का संहार करती है, इसीलिए करीषिणी है, ऐसा दिव्य तत्त्वमत है। इस मत के अनुसार पहले वर्तुल (ॐ) बोलकर फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः बोलकर (ॐ करीषिण्यै नमः) काम्य सिद्धियों को देने वाली श्रीदेवी को योगीजन जपते हैं।

कथमीश्वरी ? चराचराणां शास्त्री भवति,
विष्णोर्दिव्यचैतन्यविग्रहस्याह्लादिनी स्वामिनी भवति, जनैराराधिता

तानैश्वर्यं ददाति, लोकानीशते, सुबुद्धिदानेन पापान्नाशयति तस्मादीश्वरीति दिव्यवैदिकमतमनेन वर्तुलमुक्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमो योजयित्वैश्वर्यदात्रीं योगिनो जपन्ति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - किस प्रकार से ईश्वरी है ? चर एवं अचर प्राणियों पर शासन करती है। विष्णु के दिव्य चैतन्य विग्रह को प्रसन्न करने वाली स्वामिनी है, लोगों के द्वारा पूजित होने पर उन्हें ऐश्वर्य देती है, संसार पर शासन करती है, सुबुद्धि देकर पापों का नाश करती है, इसीलिए ईश्वरी है, ऐसा दिव्य वैदिक मत है। इस मत के अनुसार पहले वर्तुल (ॐ) बोलकर फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः बोलकर (ॐ ईश्वर्यै नमः) ऐश्वर्य को देने वाली श्रीदेवी को योगीजन जपते हैं।

कूटवृत्तिमत्राह

कीदृशो गन्धद्वारादिकूटानुसारं श्रीविग्रहः ? दिव्यवृत्तिवर्णने गनधदवआरउषइतयपटकईणशकूटवर्णानामाचारेण गन्धद्वारादयो वर्णितास्ते सर्वे कूटार्थाः पूर्वप्रसङ्गेषु निरूपिताः।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - गन्धद्वारा आदि कूटों के अनुसार श्रीविग्रह कैसा है ? दिव्यवृत्ति के वर्णन में ग-न-ध-द-व-आ-र-उ-ष-इ-त-य-प-ट-क-ई-ण-श कूट वर्णों के आचार से गन्धद्वारा आदि वर्णित हैं, उन सभी कूटों के अर्थ का वर्णन पूर्व के प्रसङ्गों में किया जा चुका है।

तत्त्ववृत्तिमत्राह

मन्त्रस्यास्य मेधा ऋषिः, सर्वसिद्धिप्रदा देवता, ब्रीमिति बीजम्, भ्रामरीशक्तिः, कमला महाविद्या, रजोगुणः, नासिका ज्ञानेन्द्रियम्, करौ कर्मेन्द्रिये, मृदुस्वरः, भूतत्त्वम्, मोहिनी कला, क्लीमित्युत्कीलनम्,

द्राविणी मुद्रा भवति। ऋषेर्न्यासस्सहस्रारे शिरसि, देवतान्यासो द्वादशारे हृदि, बीजन्यासः षडारे स्वाधिष्ठाने, शक्तिन्यासो दशारे नाभौ, विद्यान्यासः षोडशारे कण्ठे, गुणन्यासो मनसि, ज्ञानेन्द्रियन्यासश्चेतसि, कर्मेन्द्रियन्यासः कर्मेन्द्रियेषु, स्वरन्यासः कण्ठमूले, तत्त्वन्यासश्चतुरारे मूलाधारे, कलान्यासः करतले, उत्कीलनन्यासः पादयोर्मुद्रान्यासस्तु सर्वाङ्गे भवत्यस्य मन्त्रस्य सौम्यरसो भवति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - श्रीसूक्त की नवीं ऋचा के ऋषि मेधा हैं। सर्वसिद्धिप्रदा देवता हैं तथा ब्रीं बीज है। भ्रामरी शक्ति है, इसकी महाविद्या कमला एवं इसका गुण रजोगुण है। नासिका इसकी ज्ञानेन्द्रिय तथा हाथ इसके कर्मेन्द्रिय हैं। इसका स्वर मृदु एवं तत्त्व पृथ्वी है। इसकी कला का नाम मोहिनी है तथा क्लीं बीज से उत्कीलन होता है। इसकी मुद्रा द्राविणी होती है। ऋषियों का न्यास शीर्षभाग के सहस्रार चक्र में होता है। देवता का न्यास हृदय के द्वादशार अनाहत चक्र में होता है। बीज का न्यास षडार स्वाधिष्ठान में एवं शक्ति का न्यास नाभि के दशार मणिपुर चक्र में होता है। महाविद्या का न्यास कंठ के षोडशार विशुद्धि में, गुण का न्यास मन में तथा ज्ञानेन्द्रिय का न्यास चित्त में होता है। कर्मेन्द्रिय का न्यास कर्मेन्द्रियों में होता है। स्वर का न्यास कंठ के मूल में तथा तत्त्व का न्यास चतुरार मूलाधार में होता है। कला का न्यास हथेली में तथा पैरों में उत्कीलन का न्यास होता है। मुद्रा का न्यास सभी अंगों में होता है। इस मन्त्र का रस सौम्य है।

नृसिंहवृत्तिमत्राह

श्रीसूक्तस्य नवमीमृचं द्वौ नृसिंहवर्णौ सम्पुटीकृत्य रक्षतः। आदौ रुद्रयुता गर्जिनी चान्ते बिन्दुविद्यायुतो हकारः। एवं 'नृसिं' निगद्यते। तयोर्वृत्तिमग्रे दशम्यामृचि व्याख्यास्यामः।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - श्रीसूक्त की नवीं ऋचा को दो नृसिंहवर्ण सम्पुटित करके रक्षा करते हैं। प्रारम्भ में रुद्र (ऋ) से युक्त गर्जिनी (नकार) और अन्त में बिंदु (अनुस्वार) और विद्या (इकार) से युक्त हकार। इस प्रकार 'नृसिं' शब्द बनता है। उन दोनों की वृत्ति आगे दसवीं ऋचा में कहेंगे।

॥इति गन्धाधिकारः ॥

--*

॥अथ सत्याधिकारः ॥

मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि ।
पशूनां (रू) रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः ॥ १० ॥

शङ्करभाष्यम्

लोकवृत्तिमत्राह

मनसा कल्पितं कामं तथाभिप्रायोजितं तदनुगतमर्थं वाचा याचितं सुस्पष्टीकृतञ्च कान्तिद्रविणहिरण्यपश्वादीन् भक्ष्यभोज्यवैभवादीन् चिरकालस्थैर्यलक्षणानत्र कामये । तान् पूर्वोक्तकामान् मयि मम जीवने वा विभूतिदात्री श्रीर्लक्ष्मीः सन्निधापयेदित्यर्थः ।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - मन में सोची गयी कामनाओं को और उनके द्वारा प्रायोजित अर्थ को, वाणी के द्वारा मांगकर स्पष्ट किये गए सुन्दर रूप, धन, सुवर्ण, पशु, भोजन करने योग्य (अन्नादि) वैभवों को, जो लम्बे समय तक स्थिर रहें, उनकी मैं कामना करता हूँ । पहले कही गयी उन समस्त कामनाओं को मुझमें अथवा मेरे जीवन में वैभव देने वाली श्री लक्ष्मी स्थापित करे, ऐसा अर्थ है ।

दिव्यवृत्तिमत्राह

कथं मनसः काम इति ? सर्वेर्मनोरथैर्यातीता भूर्भुवस्स्वर्लोकेषु वा येऽप्राकृतिका दिव्यकामाः सन्ति ते यस्यां परायां निहितास्सा मनसः काम इत्युक्ता । श्रीहरेरुरसि स्थित्वा तस्य कामकेलिनिधाना भवति तस्मान्मनसः काम इति दिव्यदेवमतमनेन वर्तुलमुक्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमो योजयित्वा समृद्धिदात्रीं योगिनो जपन्ति ।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - किस प्रकार से 'मनसः काम' ऐसी है ? सभी मनोरथों से जो परे है, पृथ्वी-अन्तरिक्ष-स्वर्ग में जो अप्राकृतिक दिव्यभोग हैं, वे जिस पराशक्ति में निहित हैं, वह 'मनसः काम' ऐसी कही गयी है। श्रीहरि के हृदय में स्थित होकर उनकी कामक्रीड़ा का आश्रय होती है, इसीलिए 'मनसः काम' है, ऐसा दिव्य देवमत है। इस मत के अनुसार पहले वर्तुल (ॐ) बोलकर फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः बोलकर (ॐ मनसः कामाय नमः) समृद्धि देने वाली श्रीदेवी को योगीजन जपते हैं।

कथं वाच आकूतिः ? लौकिके वैदिके आगमतत्त्वेषु या घोषाघोषोच्चारिता सा वाक्। तत्राधिष्ठात्री तासामुच्चारणस्याधाराकूतिर्वा च श्रीरिति दिव्यवैदिकमतमनेन वर्तुलमुत्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमो योजयित्वा शब्दार्थसिद्धिदात्रीं योगिनो जपन्ति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - किस प्रकार से 'वाच आकूति' है ? लौकिक, वैदिक या आगम में वर्णित जो घोष या अघोष रूप से उच्चारित है, उसे वाक् या वाणी कहते हैं। वहां पर जो अधिष्ठात्री है और उसके उच्चारण का जो आधार है, वह श्री है, ऐसा दिव्य वैदिकमत है। इस मत के अनुसार पहले वर्तुल (ॐ) बोलकर फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः बोलकर (ॐ वाच आकूत्यै नमः) शब्दार्थ की सिद्धि देने वाली श्रीदेवी को योगीजन जपते हैं।

कथं सत्यम् ? सदित्यस्तित्वं त्यदिति सिद्धः। द्विधा जगत् सत्ताभावेन सिद्धभावेन वा सत्यमिति कथ्यते, तत्सर्वं श्रीरिति दिव्यमहर्षिमतमनेन वर्तुलमुत्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमो योजयित्वा सत्यफलदात्रीं योगिनो जपन्ति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - किस प्रकार से सत्य है ? अस्तित्व को सत् कहते हैं एवं सिद्ध को त्यत् कहते हैं। दो प्रकार वाला संसार सत्ताभाव एवं सिद्धभाव से सत्य कहलाता है, और वह सब श्री है, ऐसा दिव्य महर्षिमत है। इस मत के अनुसार पहले वर्तुल (ॐ) बोलकर फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः बोलकर (ॐ सत्याय नमः) सत्य का फल देने वाली श्रीदेवी को योगीजन जपते हैं।

कथं पशूनां रूपम् ? पशुरिति जीवः। देवमनुष्यतिर्यक्संज्ञकः। बद्धमुक्तनित्यरूपाणि। तेषाञ्चेतनमचेतनरूपं श्रीशक्तेर्लेशमात्रमस्ति। तस्या आग्नेयी शक्तिश्चेतनाचेतनेषु प्रकाशिता तस्मात् पशूनां रूपमिति दिव्यसाङ्ख्यमतमनेन वर्तुलमुक्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमो योजयित्वा संवित्फलदात्रीं योगिनो जपन्ति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - किस प्रकार से 'पशूनां रूपम्' है ? जीव को पशु कहते हैं। यह देवता, मनुष्य एवं तिर्यक् संज्ञक है। बद्ध, मुक्त और नित्यसंज्ञक इसके रूप हैं। उनका चेतन अथवा अचेतन रूप श्री की शक्ति का लेशमात्र है। श्री की आग्नेयी शक्ति चेतन और अचेतन में प्रकाशित है, इसीलिए 'पशूनां रूपम्' है। इस मत के अनुसार पहले वर्तुल (ॐ) बोलकर फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः बोलकर (ॐ पशूनां रूपाय नमः) सम्यक् ज्ञान का फल देने वाली श्रीदेवी को योगीजन जपते हैं।

कथमन्नस्य यशः ? द्विधान्नम्। त्रिगुणमयम् प्रकृतिप्रधानं वाप्राकृतिकं षड्गुणमयञ्च। बद्धजीवाः त्रैगुण्यमन्नमदन्ति नित्यजीवास्त्वपरम्। तयोरन्नयोर्यशः सर्वभूतात्मनि श्रीदेव्यां भवति तस्मादन्नस्य यश इति दिव्यतत्त्वमतमनेन वर्तुलमुक्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमो योजयित्वा भोगदात्रीं योगिनो जपन्ति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - किस प्रकार से 'अन्नस्य यशः' है ? दो प्रकार के अन्न हैं। तीन गुणों वाला प्रकृतिजन्य और छः गुणों वाला अप्राकृतिक। बद्ध जीव तीन गुणों वाले अन्न को खाते हैं और नित्य जीव दूसरे (छः गुणों वाले अन्न) को खाते हैं। इन दोनों अन्न का यश सभी प्राणियों की आत्मा श्रीदेवी में निहित है, इसीलिए 'अन्नस्य यशः' है, ऐसा दिव्य तत्त्वमत है। इस मत के अनुसार पहले वर्तुल (ॐ) बोलकर फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः बोलकर (ॐ अन्नस्य यशसे नमः) भोग देने वाली श्रीदेवी को योगीजन जपते हैं।

कूटवृत्तिमत्राह

कीदृशो मनसः कामादिकूटानुसारं श्रीविग्रहः ? दिव्यवृत्तिवर्णने मनसअःकआवचऊतइयपशनअंरअकूटवर्णानामाचारेण मनसः कामादयो वर्णितास्तेषु मनसकआवचऊतइयपशनरअकूटार्थाः पूर्वप्रसङ्गेषु निरूपिताश्शेषानधुना वक्ष्ये। कला, पूर्णामृता, रसना, रतिर्भद्रा, शक्तिः, सुन्दरी, विद्या, सुयशेति अःकूटार्थः। चक्षुषी, श्रीमुखी, प्रीतिः, बीजयोनिश्चेतना, पूर्णा, विचित्रा, व्योमरूपिणी, रेवतीति अङ्कूटार्थः।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - मनसः काम आदि कूटों के अनुसार श्रीविग्रह कैसा है ? दिव्यवृत्ति के वर्णन में म-न-स-अः-क-आ-व-च-ऊ-त-इ-य-प-श-न-अं-र-अ कूट वर्णों के आचार से मनसः काम आदि वर्णित हैं, उनमें से म-न-स-क-आ-व-च-ऊ-त-इ-य-प-श-न-र-अ कूटों के अर्थ का वर्णन पूर्व के प्रसङ्गों में किया जा चुका है, शेष को अब कहता हूँ। कला, पूर्णामृता, रसना, रति, भद्रा, शक्ति, सुन्दरी, विद्या, सुयशा, ये 'अः' के कूटार्थ हैं। चक्षुषी, श्रीमुखी, प्रीति, बीजयोनि, चेतना, पूर्णा, विचित्रा, व्योमरूपिणी, रेवती, ये 'अं' के कूटार्थ हैं।

तत्त्ववृत्तिमत्राह

मन्त्रस्यास्य वेदव्यास ऋषिः, सर्वप्रियङ्करी देवता, क्रोमिति बीजम्, शताक्षी शक्तिः, सुन्दरी महाविद्या, रजोगुणः, श्रोत्रे ज्ञानेन्द्रिये, मनः कर्मेन्द्रियम्, सौम्यस्वरः, जलतत्त्वम्, अविद्या कला, श्रीमित्युत्कीलनम्, योनिर्मुद्रा भवति। ऋषेर्न्यासस्सहस्रारे शिरसि, देवतान्यासो द्वादशारे हृदि, बीजन्यासः षडारे स्वाधिष्ठाने, शक्तिन्यासो दशारे नाभौ, विद्यान्यासः षोडशारे कण्ठे, गुणन्यासो मनसि, ज्ञानेन्द्रियन्यासश्चेतसि, कर्मेन्द्रियन्यासः कर्मेन्द्रियेषु, स्वरन्यासः कण्ठमूले, तत्त्वन्यासश्चतुरारे मूलाधारे, कलान्यासः करतले, उत्कीलनन्यासः पादयोर्मुद्रान्यासस्तु सर्वाङ्गे भवत्यस्य मन्त्रस्य मोहरसो भवति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - श्रीसूक्त की दसवीं ऋचा के ऋषि वेदव्यास हैं। सर्वप्रियङ्करी देवता हैं तथा क्रों बीज है। शताक्षी शक्ति है, इसकी महाविद्या सुन्दरी एवं इसका गुण रजोगुण है। कान इसके ज्ञानेन्द्रिय तथा मन ही इसका कर्मेन्द्रिय है। इसका स्वर सौम्य एवं तत्त्व जल है। इसकी कला का नाम अविद्या है तथा श्रीं बीज से उत्कीलन होता है। इसकी योनिमुद्रा होती है। ऋषियों का न्यास शीर्षभाग के सहस्रार चक्र में होता है। देवता का न्यास हृदय के द्वादशार अनाहत चक्र में होता है। बीज का न्यास षडार स्वाधिष्ठान में एवं शक्ति का न्यास नाभि के दशार मणिपुर चक्र में होता है। महाविद्या का न्यास कंठ के षोडशार विशुद्धि में, गुण का न्यास मन में तथा ज्ञानेन्द्रिय का न्यास चित्त में होता है। कर्मेन्द्रिय का न्यास कर्मेन्द्रियों में होता है। स्वर का न्यास कंठ के मूल में तथा तत्त्व का न्यास चतुरार मूलाधार में होता है। कला का न्यास हथेली में तथा पैरों में उत्कीलन का न्यास होता है। मुद्रा का न्यास सभी अंगों में होता है। इस मन्त्र का रस मोह है।

नृसिंहवृत्तिमत्राह

श्रीसूक्तस्य दशमीमृचं द्वौ नृसिंहवर्णौ सम्पुटीकृत्य रक्षतः। आदौ हकारश्चान्ते महामायायुतो भकारः। एवं नृसिंहान्तो भीषणादिश्च निगद्यते। हकारस्य वृत्तिं पूर्वर्चो नृसिंहवर्णाभ्यां नृसिं इति सहैव वक्ष्यामहे किन्तु शिष्टस्य वृत्तिमेकादश्यामृचि व्याख्यास्यामः। आश्चर्यकर्मा नृसिंहः। नृणां बन्धनं हिनोतीति नृसिंहः। नृषु पुरुषेषु वा सिंहवदुत्तमस्तस्मात्पुरुषोत्तमो नृसिंहः। नृनात्मनि बोधयन् समग्रतो हवद्व्योमवत्स्थितस्तस्मान्नृसिंहः। अस्याधिष्ठातारः नरादिनवावताराः। नरो नारायणः पारिजातहरणो राहुजित्परशुरामो रामः क्रोडात्मा हंसो वा विहङ्गमः कल्किः।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - श्रीसूक्त की दसवीं ऋचा को दो नृसिंहवर्ण सम्पुटित करके रक्षा करते हैं। प्रारम्भ में हकार और अन्त में महामाया (ई) से युक्त भकार। इस प्रकार से नृसिंह का अन्त (ह) एवं भीषण का आदि (भी) शब्द बनता है। हकार की वृत्ति पिछली ऋचा के 'नृसिं' के साथ जोड़कर कहता हूँ किन्तु बचे हुए (भी) की वृत्ति ग्यारहवीं ऋचा में कहेंगे। आश्चर्यजनक कर्म को करता है, इसीलिए नृसिंह है। लोगों के बन्धन का नाश करता है, इसीलिए नृसिंह है। नरों या पुरुषों में सिंह के समान उत्तम है, इसीलिए पुरुषोत्तम नृसिंह है। मनुष्यों की आत्मा में उद्बोधन करता हुआ ह अर्थात् आकाश के समान सभी ओर से स्थित होता है, इसीलिए नृसिंह है। इसके अधिष्ठाता नर आदि नौ अवतार हैं। नर, नारायण, पारिजातहरण, राहुजित्, परशुराम, राम, क्रोडात्मा, हंस या विहङ्गम और कल्कि, ये नौ अवतार हैं।

॥इति सत्याधिकारः॥

*_*_*

॥अथ सम्भवाधिकारः ॥

कर्दमेन प्रजाभूता मयि सम्भव कर्दम।
श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम् ॥ ११ ॥

शङ्करभाष्यम्

लोकवृत्तिमत्राह

कर्दमस्तु ब्रह्मणः छायाया जातः प्रजापतिर्वा कपिलस्य जनकः। कल्पान्तरे देववत्सरसंज्ञके स तु तपस्यया श्रीपुत्रत्वं कामयाञ्चक्रे। परञ्च श्रीरप्येकस्मिन्कल्पान्तरे तस्य पुत्री बभूव। प्रजापते कर्दम ! त्वया प्रजारूपेणाङ्गीकृतां श्रियं मयि कमलोपासके स्थापय। सर्वभूतानां जननीं पङ्कजमाल्यविभूषितां मम वंशे वा शक्तौ (कुलं कुण्डलिनी शक्तिः) निवासिनीं कुरु।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - ब्रह्मा की छाया से उत्पन्न कर्दम प्रजापति कपिल मुनि के पिता हैं। देववत्सर नामक कल्प में तपस्या करके उन्होंने लक्ष्मी का पुत्र बनने की कामना की थी। साथ ही, लक्ष्मी भी किसी कल्प में उनकी पुत्री बनी थी। हे प्रजापति कर्दम ! आपके द्वारा सन्तान के रूप में स्वीकार की गयी लक्ष्मी को मुझ लक्ष्मी के आराधक में स्थापित करें। सभी प्राणियों को जन्म देने वाली, कमल की माला से सुशोभित लक्ष्मी को मेरे वंश में अथवा शक्ति में (कुण्डलिनी शक्ति को कुल कहते हैं) निवास करने वाली बनाएं।

विशिष्टनिग्रहवृत्तिमत्राह

कथं श्रियः पिता कर्दमः ? कर्दममिति मांसम् मांसो वा। मांसमिति

बृंहणत्वम्, मांस इति कालः। काल इति समयः संयोगो वा। कालेन प्रजाः जायन्ते। ब्रह्मणो बृंहणत्वमाश्रित्य तस्य संयोगेनाध्यक्षेण वा प्रकृतिः सगुणाकृतिं सृष्टिं सूयते। तस्मात् कर्दमपुत्री श्रीर्भवति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - श्री के पिता कर्दम कैसे हैं ? कर्दम का अर्थ मांस होता है। मांस का अर्थ विस्तार और काल होता है। काल समय या संयोग को कहते हैं। काल से ही प्रजा उत्पन्न होती है। ब्रह्म के विस्तार का आश्रय लेकर उसके संयोग से या अध्यक्षता में प्रकृति इस सगुणाकृति सृष्टि को जन्म देती है, इसीलिए श्री कर्दम की पुत्री होती है।

दिव्यवृत्तिमत्राह

कथं माता ? भुवनपदमन्त्रतत्त्वकलावर्णभेदेन षण्मन्त्रावयवास्तान्मिमीते शब्दायमानान् करोति सा मा। लोकान् मीयते सा मा। यस्याः कुक्षौ जगन्माति सा मा। मानानां परमं मानं भवति मा। जगत्तारयतीति ता तृ वा। त्रिगुणदोषाम्बुधिं तरन्ती भूतेषु चेतनारूपेण प्लवते तस्मात्ता। संवर्तकमेघरूपिणी विश्वमाप्लावयति तस्मात्ता। सर्वेषां हितसाधिनी हितचिन्तनतत्परा माता इति दिव्ययोगमतमनेन वर्तुलमुक्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमो योजयित्वा भोगसमृद्धिदात्रीं योगिनो जपन्ति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - किस प्रकार से माता है ?भुवन, पद, मन्त्र, तत्त्व, कला और वर्ण के भेद से मन्त्र के छः अवयव होते हैं, उन्हें जो शब्दायमान करती है, वह मा है। संसार का संहार करने से मा है। जिसके उदर में संसार लीन होता है, वह मा है। परिमित ज्ञानसमूहों की भी पारमिता है, इसीलिए मा है। जगत् को तारती है इसीलिए ता या तृ है। तीनों गुणों के दोष से युक्त भवसागर को पार करती हुई प्राणियों में चेतनारूप से तैरती है, इसीलिए ता

है। संवर्तक बादल बनकर संसार को डुबाती है, इसीलिए ता है। सबों के हित को सिद्ध करती है और हित के चिन्तन में लगी रहती है, इसीलिए माता है, ऐसा दिव्य योगमत है। इस मत के अनुसार पहले वर्तुल (ॐ) बोलकर फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः बोलकर (ॐ मात्रे नमः) भोग की समृद्धि देने वाली श्रीदेवी को योगीजन जपते हैं।

कथं पद्ममालिनी ? मुक्तियानं महायानं योगियानमिति त्रिनाम्नी सुषुम्ना। सा तु नाडीचक्रस्य नायिका सूक्ष्मा वैष्णवी शक्तिर्भवति। मूलाधारतः सहस्रारपर्यन्तञ्च पातालतः परमाकाशपर्यन्तं व्याप्ता भवति। खेदिनामुद्धारार्थं श्रीरेव सुषुम्नारूपिणी भूत्वा आधारादिद्वात्रिंशत्पद्मानि माल्यवद्धारयति तस्मात्पद्ममालिनी। पूर्वप्रसङ्गवर्णितानुसारं पद्ममिति प्रकृतिः पद्ममिति पुरुषः पद्ममिति कालः। तान् पूर्वोक्तान्पद्मसंज्ञकान् माल्यवद्धारयति तस्मात्पद्ममालिनीति दिव्यकौलमतमनेन वर्तुलमुक्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमो योजयित्वा सर्वकर्मफलदात्रीं योगिनो जपन्ति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - किस प्रकार से पद्ममालिनी है ? सुषुम्ना नाड़ी मुक्तियान, महायान और योगियान, इन तीन नामों वाली है और नाड़ियों के समूह की नायिका है। वह विष्णु की सूक्ष्म शक्ति होती है। मूलाधार से सहस्रार पर्यन्त तथा पाताल से परमाकाश पर्यन्त वह व्याप्त रहती है। दुःखी जनों के उद्धार के लिए श्री ही सुषुम्ना का रूप धारण करके आधार आदि बत्तीस कमलों को माला के समान धारण करती है, इसीलिए पद्ममालिनी है। पहले के प्रसङ्गों में कहे अनुसार प्रकृति, पुरुष एवं काल को पद्म कहते हैं। उन पहले कहे गए पद्मों को माला के समान धारण करती है, इसीलिए पद्ममालिनी है, ऐसा दिव्य कौलमत है। इस मत के अनुसार पहले वर्तुल (ॐ बोलकर) फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः बोलकर (ॐ पद्म-

मालिन्यै नमः) सभी कर्मों का फल देने वाली श्रीदेवी को योगीजन जपते हैं।

कूटवृत्तिमत्राह

कीदृशो मात्रादिकूटानुसारं श्रीविग्रहः ? दिव्यवृत्तिवर्णने मआतपदलइनईकूटवर्णानामाचारेण मात्रादयो वर्णितास्ते सर्वे कूटार्थाः पूर्वप्रसङ्गेषु निरूपिताः।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - माता आदि कूटों के अनुसार श्रीविग्रह कैसा है ? दिव्यवृत्ति के वर्णन में म-आ-त-प-द-ल-इ-न-ई कूट वर्णों के आचार से माता आदि वर्णित हैं, उन सभी कूटों के अर्थ का वर्णन पूर्व के प्रसङ्गों में किया जा चुका है।

तत्त्ववृत्तिमत्राह

मन्त्रस्यास्य विष्णुर्ऋषिः, सर्वव्याधिविनाशिनी देवता, ह्रामिति बीजम्, इन्द्राणी शक्तिः, भुवनेश्वरी महाविद्या, सत्त्वगुणः, त्वग्ज्ञानेन्द्रियम्, करौ कर्मेन्द्रिये, मृदुस्वरः, वायुस्तत्त्वम्, शान्तिः कला, ऐमित्युत्कीलनम्, सम्पुटमुद्रा भवति। ऋषेर्न्यासस्सहस्रारे शिरसि, देवतान्यासो द्वादशारे हृदि, बीजन्यासः षडारे स्वाधिष्ठाने, शक्तिन्यासो दशारे नाभौ, विद्यान्यासः षोडशारे कण्ठे, गुणन्यासो मनसि, ज्ञानेन्द्रियन्यासश्चेतसि, कर्मेन्द्रियन्यासः कर्मेन्द्रियेषु, स्वरन्यासः कण्ठमूले, तत्त्वन्यासश्चतुरारे मूलाधारे, कलान्यासः करतले, उत्कीलनन्यासः पादयोर्मुद्रान्यासस्तु सर्वाङ्गे भवत्यस्य मन्त्रस्य स्तवनरसो भवति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - श्रीसूक्त की ग्यारहवीं ऋचा के ऋषि विष्णु हैं। सर्व-व्याधिविनाशिनी देवता हैं तथा ह्रां बीज है। इन्द्राणी शक्ति है, इसकी महाविद्या भुवनेश्वरी एवं इसका गुण सत्वगुण है। त्वचा इसकी ज्ञानेन्द्रिय तथा

हाथ इसके कर्मेन्द्रिय हैं। इसका स्वर मृदु एवं तत्त्व वायु है। इसकी कला का नाम शान्ति है तथा ऐं बीज से उत्कीलन होता है। इसकी सम्पुट मुद्रा होती है। ऋषियों का न्यास शीर्षभाग के सहस्रार चक्र में होता है। देवता का न्यास हृदय के द्वादशार अनाहत चक्र में होता है। बीज का न्यास षडार स्वाधिष्ठान में एवं शक्ति का न्यास नाभि के दशार मणिपुर चक्र में होता है। महाविद्या का न्यास कंठ के षोडशार विशुद्धि में, गुण का न्यास मन में तथा ज्ञानेन्द्रिय का न्यास चित्त में होता है। कर्मेन्द्रिय का न्यास कर्मेन्द्रियों में होता है। स्वर का न्यास कंठ के मूल में तथा तत्त्व का न्यास चतुरार मूलाधार में होता है। कला का न्यास हथेली में तथा पैरों में उत्कीलन का न्यास होता है। मुद्रा का न्यास सभी अंगों में होता है। इस मन्त्र का रस स्तवन है।

नृसिंहवृत्तिमत्राह

श्रीसूक्तस्यैकादशीमृचं द्वौ नृसिंहवर्णौ सम्पुटीकृत्य रक्षतः। आदौ षकारश्चान्ते णकारः। एवं 'षण' निगद्यते। अनयोर्वृत्तिं पूर्वर्चो नृसिंहवर्णेन 'भी' इति सहैव वक्ष्ये। दुष्टेभ्यो भियं सनोतीति भीषणः। भेति तत्त्वज्ञानं प्रकाशो वा। भामीषते स भेषणस्तस्यैव भीषण इति संज्ञा। पशुभावस्य जीवस्य क्लेशादिपाशा भी शब्देनेङ्गिताः। तं पाशं भियं वा स्यति खण्डयति संसारबन्धनं वा स्यति स भीषणः। अस्याधिष्ठातारो ध्रुवादयश्चत्वारोऽवताराः। ध्रुवो न्यग्रोधशायी च नृसिंहो मधुसूदन इति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - श्रीसूक्त की ग्यारहवीं ऋचा को दो नृसिंहवर्ण सम्पुटित करके रक्षा करते हैं। प्रारम्भ में षकार और अन्त णकार। इस प्रकार से 'षण' शब्द बनता है। इन दोनों की वृत्ति पिछली ऋचा के 'भी' के साथ जोड़कर कहता हूँ। दुष्टों को भय प्रदान करने से भीषण है। तत्त्वज्ञान या प्रकाश को 'भा' कहते हैं। 'भा' को प्रेरित करना भेषण है और उसकी ही भीषण संज्ञा

है। पशुभाव वाले जीव के क्लेश आदि पाशों को 'भी' शब्द से बताया जाता है। उस पाश या 'भी' का जो खण्डन करे अथवा संसार के बन्धन का खण्डन करे, वह भीषण है। इसके अधिष्ठाता ध्रुव आदि चार अवतार होते हैं। ध्रुव, न्यग्रोधशायी, नृसिंह और मधुसूदन, ये चार अवतार हैं।

॥इति सम्भवाधिकारः ॥

--*

॥अथ कुलाधिकारः ॥

आपः॑ सृ॒जन्तु॑ स्नि॒ग्धा॒नि॒ चि॒क्ली॒त व॑स मे॒ गृहे।
नि च॑ दे॒वीं मा॒तर॑ श्रिय॑ वा॒सय॑ मे कु॒ले ॥ १२ ॥

शङ्करभाष्यम्

लोकवृत्तिमत्राह

श्रियः पुत्र चिक्लीत ! मम गृहे दिव्याम्बुभूतानि घृतमधुतैलादिस्निग्धान्युत्पादय। सर्वाश्रयां दिव्यभासां लोकजननीं मम वंशे शक्तौ वा सन्निधापयेत्यर्थः।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - हे श्री के पुत्र चिक्लीत ! मेरे घर में दिव्य जल से उत्पन्न होने वाले घृत, मधु, तेल आदि स्निग्ध पदार्थों का उत्पादन करें। सबों की आश्रयभूता, दिव्य तेज वाली, संसार को जन्म देने वाली श्रीदेवी को मेरे वंश अथवा शक्ति में स्थापित करें, ऐसा अर्थ है।

विशिष्टनिग्रहवृत्तिमत्राह

के श्रियः पुत्राः ? ब्रह्मणस्त्रिंशत्तमे दशशतोत्तरे मतान्तराद्वा त्रिंशद्दशशते देववत्सरसंज्ञके कल्पे चतुर्दशे मन्वन्तरे लक्ष्मीनारायणयोर्पञ्चभक्ता बभूवुः। ते देवसखः कीर्तिश्चिक्लीतः कर्दमो जातवेदश्च सहोदराः सात्विकाश्चासन्। तेषु कर्दमः प्रजापतिर्बभूव जातवेदोऽग्निर्देवता देवसखस्तु मरुद्गणसंज्ञकस्तथा कीर्तिर्विश्वस्य बृंहणत्वाधिपतिश्चिक्लीतो दिवानक्तानामधिपतिर्भूत्वा श्रीहरेरन्तःपुररक्षको बभूव। कल्पान्तरे कर्दमः श्रीदश्चिक्लीत आनन्दसंज्ञकाः पुत्रा वामनः कुट्टको जटिलः कुटिलनाम्ना

प्रसिद्धास्ते चत्वारः श्रियः पुत्रा श्रीहीने न वसन्ति। तत्र कर्दमः प्रजापतिर्बभूव श्रीदो यक्षेश्वरश्चिक्लीतो वैकुण्ठान्तःपुरद्वाररक्षकस्तथानन्दो वासुदेवव्यूहस्य बलो बभूव।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - श्री के पुत्र कौन हैं ? ब्रह्मा के १०३०वें अथवा मतान्तर से ३००००वें देववत्सर नामक कल्प के चौदहवें मन्वन्तर में श्रीलक्ष्मीनारायण के पांच भक्त हुए। देवसख, कीर्ति, चिक्लीत, कर्दम एवं जातवेद। ये पांचों सहोदर एवं सात्विक थे। उनमें कर्दम प्रजापति बने, जातदेव अग्नि के देवता बने, देवसख मरुद्गण कहलाये, विश्व के विस्तार के स्वामी कीर्ति बने एवं चिक्लीत दिन तथा रात्रि के स्वामी होकर श्रीहरि के अन्तःपुर के द्वारपाल बने। किसी अन्य कल्प में कर्दम, श्रीद, चिक्लीत, और आनन्दसंज्ञक पुत्र भी हुए जिन्हें वामन, कुट्टक, जटिल और कुटिल नामों से प्रसिद्धि मिली। श्री के ये चार पुत्र श्रीहीन के पास नहीं रहते हैं। वहां पर कर्दम प्रजापति हुए, श्रीद यक्षेश्वर (कुबेर) हुए, चिक्लीत वैकुण्ठ के अन्तःपुर के द्वारपाल बने और आनन्द वासुदेवव्यूह के बल बने।

अभावमत्राह

सिद्धयोगिन्या पद्मिनीदेव्या निग्रहाय मन्त्रस्यास्य दिव्यवृत्तिर्न प्रकाशिता।
न केवलं निग्रहायापित्विन्द्रादिभ्योऽपि पुरा श्रिया नोक्ता।
निग्रहो नैव जानाति न जानन्ति सुरेश्वराः।
ऋषयोऽपि न जानन्ति शेषाणां का कथा भवेत् ?
दिव्यवृत्तेरभावात्कूटवृत्तेरभावस्तस्मादप्रकाशिता।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - सिद्धयोगिनी पद्मिनी देवी के द्वारा निग्रहाचार्य के लिए इस मन्त्र की दिव्यवृत्ति प्रकाशित नहीं की गयी है। केवल निग्रहाचार्य के साथ ही ऐसा नहीं है, पूर्वकाल में इन्द्र आदि के लिए भी लक्ष्मी के द्वारा इसे नहीं

कहा गया है। इसे निग्रहाचार्य नहीं जानते हैं, बड़े बड़े देवता नहीं जानते हैं, ऋषिगण भी नहीं जानते हैं, फिर शेषजनों की क्या बात करें ! दिव्यवृत्ति के अभाव में कूटवृत्ति का भी अभाव है, इसीलिए उसका भी वर्णन नहीं किया गया है।

तत्त्ववृत्तिमत्राह

मन्त्रस्यास्याजस ऋषिः, महालक्ष्मीर्देवता, ह्रामिति बीजम्, शूलधारिणी शक्तिः, पीताम्बरा महाविद्या, रजोगुणः, त्वग्ज्ञानेन्द्रियम्, गुदं कर्मेन्द्रियम्, गम्भीरस्वरः, भूतत्त्वम्, प्रवृत्तिः कला, ल्हीमित्युत्कीलनम्, मत्स्यमुद्रा भवति। ऋषेर्न्यासस्सहस्रारे शिरसि, देवतान्यासो द्वादशारे हृदि, बीजन्यासः षडारे स्वाधिष्ठाने, शक्तिन्यासो दशारे नाभौ, विद्यान्यासः षोडशारे कण्ठे, गुणन्यासो मनसि, ज्ञानेन्द्रियन्यासश्चेतसि, कर्मेन्द्रियन्यासः कर्मेन्द्रियेषु, स्वरन्यासः कण्ठमूले, तत्त्वन्यासश्चतुरारे मूलाधारे, कलान्यासः करतले, उत्कीलनन्यासः पादयोर्मुद्रान्यासस्तु सर्वाङ्गे भवत्यस्य मन्त्रस्य गाम्भीर्यरसो भवति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - श्रीसूक्त की बारहवीं ऋचा के ऋषि अजस हैं। महालक्ष्मी देवता हैं तथा ह्रां बीज है। शूलधारिणी शक्ति है, इसकी महाविद्या पीताम्बरा एवं इसका गुण रजोगुण है। त्वचा इसकी ज्ञानेन्द्रिय तथा गुदा इसकी कर्मेन्द्रिय है। इसका स्वर गम्भीर एवं तत्त्व पृथ्वी है। इसकी कला का नाम प्रवृत्ति है तथा ल्हीं बीज से उत्कीलन होता है। इसकी मत्स्यमुद्रा होती है। ऋषियों का न्यास शीर्षभाग के सहस्रार चक्र में होता है। देवता का न्यास हृदय के द्वादशार अनाहत चक्र में होता है। बीज का न्यास षडार स्वाधिष्ठान में एवं शक्ति का न्यास नाभि के दशार मणिपुर चक्र में होता है। महाविद्या का न्यास कंठ के षोडशार विशुद्धि में, गुण का न्यास मन में तथा ज्ञानेन्द्रिय का न्यास चित्त में होता है। कर्मेन्द्रिय का न्यास कर्मेन्द्रियों में होता है। स्वर का

न्यास कंठ के मूल में तथा तत्त्व का न्यास चतुरार मूलाधार में होता है। कला का न्यास हथेली में तथा पैरों में उत्कीलन का न्यास होता है। मुद्रा का न्यास सभी अंगों में होता है। इस मन्त्र का रस गाम्भीर्य है।

नृसिंहवृत्तिमत्राह

श्रीसूक्तस्य द्वादशीमृचं द्वौ नृसिंहवर्णौ सम्पुटीकृत्य रक्षतः। आदौ भकारश्चान्ते वह्नियुतो दकारः। एवं भद्रो निगद्यते। शृङ्गारेण भद्रः। आनन्दितापाङ्गयुतया श्रियालोकितो भद्रः। सूर्याय भां ददाति, सतां भक्तानां भवं भावं वा द्रावयत इति भद्रः। दोषैर्नाप्लुतो भद्रः। अवतारकालेऽपि स्वभावं न त्यजन् हेयसम्बन्धं नाप्नोतीति भद्रः। उग्रोऽपि सन् वीरोऽपि सन् ज्वलन्नपि भीषणोऽपि सन् कल्याणं करोति तस्माद्भद्रः। अस्याधिष्ठातारः कपिलादयो त्रयोऽवताराः।
कपिलो दत्तात्रेयस्तथा शान्तात्मा।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - श्रीसूक्त की बारहवीं ऋचा को दो नृसिंहवर्ण सम्पुटित करके रक्षा करते हैं। प्रारम्भ में भकार और अन्त वह्नि (र) से युक्त दकार। इस प्रकार से 'भद्र' शब्द बनता है। शृङ्गार से युक्त होने के कारण भद्र है। लक्ष्मी के द्वारा आनन्दित कटाक्ष से देखे जाने के कारण भद्र है। सूर्य को प्रभा देता है, सज्जन एवं भक्तों के सांसारिक भाव को नष्ट करता है, इसीलिए भद्र है। दोषों से युक्त नहीं होता है, इसीलिए भद्र है। अवतार के समय भी अपने स्वभाव को न छोड़ते हुए हीन कारणों तथा सम्बन्धों को प्राप्त नहीं करता है, इसीलिए भद्र है। उग्र और वीर होते हुए भी, जलते हुए एवं भीषण होते हुए भी कल्याण करता है, इसीलिए भद्र है। इसके अधिष्ठाता कपिल आदि तीन अवतार हैं - कपिल, दत्तात्रेय तथा शान्तात्मा।

॥इति कुलाधिकारः॥

॥अथ पिङ्गलाधिकारः ॥

आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह ॥ १३ ॥

शङ्करभाष्यम्

लोकवृत्तिमत्राह

दयार्द्रचित्तां पुष्करेण दिव्यगजेन्द्रशुण्डाग्रेण समन्वितामथवा पुष्करीं सिन्धुतनयां सम्पोषणरतामग्निप्रभां पङ्कजाभरणां चन्द्रसन्निभां सुवर्णाध्यक्षां (धात्वर्थे शब्दार्थे वा) लक्ष्मीं वेदज्ञानिना विष्णुना सह सन्निधापय।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - जिसका हृदय दया से द्रवित है, जो पुष्कर अर्थात् दिव्य गजेन्द्रों की सूंढ़ के अग्रभाग से युक्त है अथवा समुद्र की पुत्री, अग्नि के समान प्रकाश वाली, कमल के आभूषण धारण करने वाली, चन्द्रमा के समान प्रभा वाली, सोना अथवा सुन्दर शब्दों की स्वामिनी उस लक्ष्मी को वेदज्ञान से युक्त विष्णु के साथ स्थापित करो।

दिव्यवृत्तिमत्राह

कथं पुष्करिणी ? रूपेण यशसा श्रिया च पोषयति, कालपद्मस्य पुष्करमुन्नयति पुष्करिणीति दिव्यर्षिमतमनेन वर्तुलमुक्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमो योजयित्वा पुष्टिफलदात्रीं योगिनो जपन्ति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - किस प्रकार से पुष्करिणी है ? रूप, यश और श्री (आश्रय) से पोषण करती है, कालरूपी पद्म के पुष्कर को उठाती है, इसीलिए पुष्करिणी है, ऐसा दिव्यऋषिमत है। इस मत के अनुसार पहले वर्तुल (ॐ) बोलकर फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः बोलकर (ॐ पुष्करिण्यै

नमः) पोषण के फल को देने वाली श्रीदेवी को योगीजन जपते हैं।

कथं पुष्टिः ? दिव्यवृत्तिवर्णने पुष्टिस्तु नित्यपुष्टासमा। तस्याः स्थाने तुष्टिरिति कथ्यते। कथं तुष्टिः ? स्वगुणैर्विष्णुं तोषयति, तस्य गुणैरपि तुष्टा भवति, भक्तकर्मभिस्तुष्टा सर्वमखिलं तुष्टं करोति तस्मात्तुष्टिरिति दिव्ययोगमतमनेन वर्तुलमुक्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमो योजयित्वा षडक्षरेण मनःसंतुष्टिदात्रीं योगिनो जपन्ति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - किस प्रकार से पुष्टि है ? दिव्यवृत्ति के वर्णन में पुष्टि नित्यपुष्टा के समान है, उसके स्थान पर तुष्टि को कहा जाता है। किस प्रकार से तुष्टि है ? अपने गुणों से विष्णु को सन्तुष्ट करती है, उनके गुणों से स्वयं ही तुष्ट होती है, भक्त के कर्मों से सन्तुष्ट होकर शेष सभी (देवता-पितृ आदि) को सन्तुष्ट करती है, इसीलिए तुष्टि है, ऐसा दिव्य योगमत है। इस मत के अनुसार पहले वर्तुल (ॐ) बोलकर फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः बोलकर छः अक्षरों वाले मन्त्र (ॐ तुष्टये नमः) एवं मन की सन्तुष्टि देने वाली श्रीदेवी को योगीजन जपते हैं।

कथं पिङ्गला ? प्रतप्तकाञ्चनवर्णा पिङ्गला। पिङ्गाय यक्षेश्वराय महच्छ्रियं लातीति पिङ्गला। यक्षैर्पिङ्गलेति सम्बोधिता पिङ्गलेति दिव्ययक्षमतमनेन वर्तुलमुक्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमो योजयित्वा योगतेजोदात्रीं योगिनो जपन्ति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - किस प्रकार से पिङ्गला है ? तपाये हुए सोने के समान वर्ण वाली होने से पिङ्गला है। पिङ्ग नामक यक्षेश्वर को महान् समृद्धि देती है, इसीलिए पिङ्गला है। यक्षों के द्वारा पिङ्गला नाम से ही पुकारी जाती है, इसीलिए पिङ्गला है, ऐसा दिव्य यक्षमत है। इस मत के अनुसार पहले वर्तुल

(ॐ) बोलकर फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः बोलकर (ॐ पिङ्गलायै नमः) योग के तेज को देने वाली श्रीदेवी को योगीजन जपते हैं।

कूटवृत्तिमत्राह

कीदृशः पुष्करिण्यादिकूटानुसारं श्रीविग्रहः ? दिव्यवृत्तिवर्णने पउषकरइणईतटङगलआकूटवर्णानामाचारेण पुष्करिण्यादयो वर्णितास्तेषु ङकूटं विहाय सर्वे कूटार्थाः पूर्वप्रसङ्गेषु निरूपिताः। भैरवी, शिशुप्रिया, कान्तिर्धीरा, ज्वालिनी, मन्त्रशक्तिर्विघ्नेशी, महानन्दा, कामेशीति ङकूटार्थः।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - पुष्करिणी आदि कूटों के अनुसार श्रीविग्रह कैसा है ? दिव्यवृत्ति के वर्णन में प-उ-ष-क-र-इ-ण-ई-त-ट-ङ-ग-ल-आ कूट वर्णों के आचार से पुष्करिणी आदि वर्णित हैं, उनमें ङकूट को छोड़ कर शेष सभी कूटों के अर्थ का वर्णन पूर्व के प्रसङ्गों में किया जा चुका है। भैरवी, शिशुप्रिया, कान्ति, धीरा, ज्वालिनी, मन्त्रशक्ति, विघ्नेशी, महानन्दा, कामेशी, ये 'ङ' के कूटार्थ हैं।

तत्त्ववृत्तिमत्राह

मन्त्रस्यास्य मेधा ऋषिः, सर्वसौभाग्यदायिनी देवता, द्रामिति बीजम्, भीमा शक्तिः, ज्येष्ठा महाविद्या, रजोगुणः, नासिका ज्ञानेन्द्रियम्, करौ कर्मेन्द्रिये, दीनस्वरः, वायुस्तत्त्वम्, पराशान्तिः कला, ऐमित्युत्कीलनम्, धेनुमुद्रा भवति। ऋषेर्न्यासस्सहस्रारे शिरसि, देवतान्यासो द्वादशारे हृदि, बीजन्यासः षडारे स्वाधिष्ठाने, शक्तिन्यासो दशारे नाभौ, विद्यान्यासः षोडशारे कण्ठे, गुणन्यासो मनसि, ज्ञानेन्द्रियन्यासश्चेतसि, कर्मेन्द्रियन्यासः कर्मेन्द्रियेषु, स्वरन्यासः कण्ठमूले, तत्त्वन्यासश्चतुरारे मूलाधारे, कलान्यासः करतले, उत्कीलनन्यासः पादयोर्मुद्रान्यासस्तु सर्वाङ्गे

भवत्यस्य मन्त्रस्य गाम्भीर्यरसो भवति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - श्रीसूक्त की तेरहवीं ऋचा के ऋषि मेधा हैं। सर्व-सौभाग्यदायिनी देवता हैं तथा द्रां बीज है। भीमा शक्ति है, इसकी महाविद्या ज्येष्ठा एवं इसका गुण रजोगुण है। नासिका इसकी ज्ञानेन्द्रिय तथा हाथ इसके कर्मेन्द्रिय हैं। इसका स्वर दीन एवं तत्त्व वायु है। इसकी कला का नाम पराशान्ति है तथा ऐं बीज से उत्कीलन होता है। इसकी धेनुमुद्रा होती है। ऋषियों का न्यास शीर्षभाग के सहस्रार चक्र में होता है। देवता का न्यास हृदय के द्वादशार अनाहत चक्र में होता है। बीज का न्यास षडार स्वाधिष्ठान में एवं शक्ति का न्यास नाभि के दशार मणिपुर चक्र में होता है। महाविद्या का न्यास कंठ के षोडशार विशुद्धि में, गुण का न्यास मन में तथा ज्ञानेन्द्रिय का न्यास चित्त में होता है। कर्मेन्द्रिय का न्यास कर्मेन्द्रियों में होता है। स्वर का न्यास कंठ के मूल में तथा तत्त्व का न्यास चतुरार मूलाधार में होता है। कला का न्यास हथेली में तथा पैरों में उत्कीलन का न्यास होता है। मुद्रा का न्यास सभी अंगों में होता है। इस मन्त्र का रस गाम्भीर्य है।

नृसिंहवृत्तिमत्राह

श्रीसूक्तस्य त्रयोदशीमृचं द्वौ नृसिंहवर्णौ सम्पुटीकृत्य रक्षतः। आदौ रुद्रयुतो मकारश्चान्ते पूतनाशङ्करयुतो यकारः। एवं मृत्युर्निगद्यते। अनयोर्वृत्तिमग्रे चतुर्दश्यामृचि व्याख्यास्यामः।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - श्रीसूक्त की तेरहवीं ऋचा को दो नृसिंहवर्ण सम्पुटित करके रक्षा करते हैं। प्रारम्भ में रुद्र (ऋ) से युक्त मकार और अन्त में पूतना (त) एवं शंकर (उ) से युक्त यकार। इस प्रकार 'मृत्यु' शब्द बनता है। इन दोनों की वृत्ति आगे चौदहवीं ऋचा में कहेंगे।

॥इति पिङ्गलाधिकारः ॥

॥अथ सुवर्णाधिकारः ॥

आ॒र्द्रां यः॒ करि॑णीं य॒ष्टिं सु॒व॒र्णां हे॑मम॒मालिनीम्।
सू॒र्यां हि॒रण्म॑यीं ल॒क्ष्मीं जात॑वेदो म॒ आवह ॥ १४॥

शङ्करभाष्यम्

लोकवृत्तिमत्राह

य इति यशः। दयार्द्रचित्तां यशस्करीं भक्तैः सुपूजितां सुरूपां स्वर्णमाल्यादिभिरलङ्कृताम् सूर्यप्रभां शत्रुघ्नीं लक्ष्मीं वेदज्ञानिना विष्णुना सह सन्निधापय।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - य का अर्थ यश है। दया से द्रवित चित्त वाली, यश को प्रदान करने वाली, भक्तों के द्वारा अच्छी प्रकार से पूजित, सुन्दर रूप वाली, सुवर्ण की माला आदि से विभूषित, सूर्य के समान प्रकाश वाली, शत्रुओं का नाश करने वाली लक्ष्मी को वेदज्ञान से युक्त विष्णु के साथ स्थापित करो।

दिव्यवृत्तिमत्राह

कथं यष्टिः ? देवैरिष्टा विष्णुसङ्गता भवतीष्टदात्री च जीवानामवलम्बनं भवति, प्रकृतेर्जीवस्य पुरुषस्य चाश्रया भवति तस्माद्यष्टिरिति दिव्यमहर्षिमतमनेन वर्तुलमुक्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमो योजयित्वा षडक्षरेण योगफलदात्रीं योगिनो जपन्ति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - किस प्रकार से यष्टि है ? देवताओं के द्वारा पूजित होती

है, विष्णु के साथ रहती है, अभीष्ट वस्तुओं को देती है और प्राणियों का अवलम्बन बनती है। प्रकृति, जीव और पुरुष का आश्रय बनती है, इसीलिए यष्टि है, ऐसा दिव्य महर्षिमत है। इस मत के अनुसार पहले वर्तुल (ॐ) बोलकर फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः बोलकर छः अक्षरों वाले मन्त्र (ॐ यष्टये नमः) एवं योग के फल को देने वाली श्रीदेवी को योगीजन जपते हैं।

कथं सुवर्णा ? सुवः परमपरमपवर्गं स्वर्गं वा नयति सुवर्णयति तस्मात्सुवर्णा। सरस्वतीरूपे सुशोभनैर्वर्णैर्वाच्या तेषां वाचिका वा सुवर्णेति दिव्यब्राह्मणमतमनेन वर्तुलमुक्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमो योजयित्वा सर्वसम्पत्तिदात्रीं योगिनो जपन्ति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - किस प्रकार से सुवर्णा है ? सुव अर्थात् पर अथवा अपर, मोक्ष अथवा स्वर्ग में ले जाती है, इसीलिए सुवर्णा है। सरस्वती रूप से शोभन वर्णों से कही जाती है, अथवा उन्हें कहती है, इसीलिए सुवर्णा है, ऐसा दिव्य ब्राह्मणमत है। इस मत के अनुसार पहले वर्तुल (ॐ) बोलकर फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः बोलकर (ॐ सुवर्णायै नमः) सभी प्रकार की सम्पत्ति को देने वाली श्रीदेवी को योगीजन जपते हैं।

कथं हेममालिनी ? खेचरमण्डितं हाटकशृङ्गिणं दिव्यमेरुशैलं वेधसो मर्यादासिद्धये धैर्यप्रतीकेण धरारूपेण धारयन्ती ब्रह्मस्तुता भवति हेममालिनीति दिव्यब्राह्ममतमनेन वर्तुलमुक्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमो योजयित्वा धैर्यदात्रीं योगिनो जपन्ति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - किस प्रकार से हेममालिनी है ? ग्रह-नक्षत्रों से घिरे हुए स्वर्णमय शिखर से युक्त दिव्य मेरु पर्वत को ब्रह्मा की सृष्टिमर्यादा की सिद्धि के

लिए धैर्य की प्रतीक पृथ्वी बनकर धारण करती हुई, ब्रह्मा के द्वारा स्तुत होती है, इसीलिए हेममालिनी है, ऐसा दिव्य ब्राह्ममत है। इस मत के अनुसार पहले वर्तुल (ॐ) बोलकर फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः बोलकर (ॐ हेममालिन्यै नमः) धैर्य को देने वाली श्रीदेवी को योगीजन जपते हैं।

कथं सूर्या ? जीवहितेच्छया पञ्चविंशतितत्त्वानि सूयते, कर्मानुसारं भोगे मोक्षे वा रमयति, पूर्वसूतानि तत्त्वानि कालशक्त्या नियच्छति तथार्कमण्डले सूर्यरूपिणी भूत्वा सूरिणां हितं करोति सूर्येति दिव्यसूरिमतमनेन वर्तुलमुक्त्वा चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमो योजयित्वा भोगमोक्षदात्रीं योगिनो जपन्ति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - किस प्रकार से सूर्या है ? जीवों के हित की इच्छा से पच्चीस तत्वों को जन्म देती है, उनके कर्म के अनुसार उन्हें भोग या मोक्ष में रमण कराती है, पहले उत्पन्न किये हुए तत्वों को अपनी कालशक्ति से नियन्त्रित करती है एवं अर्कमण्डल में सूर्यरूपिणी होकर विद्वानों का हित करती है, इसीलिए सूर्या है, ऐसा दिव्य सूरिमत है। इस मत के अनुसार पहले वर्तुल (ॐ) बोलकर फिर नाम के अन्त में चतुर्थी लगाकर, नमः बोलकर (ॐ सूर्यायै नमः) भोग एवं मोक्ष को देने वाली श्रीदेवी को योगीजन जपते हैं।

तत्त्ववृत्तिमत्राह

मन्त्रस्यास्य वेदव्यास ऋषिः, सर्वाह्लादिनी देवता, रूमिति बीजम्, वारुणी शक्तिः, तारा महाविद्या, सत्त्वगुणः, श्रोत्रे ज्ञानेन्द्रिये, पादौ कर्मेन्द्रिये, मध्यमः स्वरः, वायुस्तत्त्वम्, विद्या कला, क्रीमित्युत्कीलनम्, आकर्षिणी मुद्रा भवति। ऋषेर्न्यासस्सहस्रारे शिरसि, देवतान्यासो द्वादशारे हृदि,

बीजन्यासः षडारे स्वाधिष्ठाने, शक्तिन्यासो दशारे नाभौ, विद्यान्यासः षोडशारे कण्ठे, गुणन्यासो मनसि, ज्ञानेन्द्रियन्यासश्चेतसि, कर्मेन्द्रियन्यासः कर्मेन्द्रियेषु, स्वरन्यासः कण्ठमूले, तत्त्वन्यासश्चतुरारे मूलाधारे, कलान्यासः करतले, उत्कीलनन्यासः पादयोर्मुद्रान्यासस्तु सर्वाङ्गे भवत्यस्य मन्त्रस्य सौम्यरसो भवति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - श्रीसूक्त की चौदहवीं ऋचा के ऋषि वेदव्यास हैं। सर्वाह्लादिनी देवता हैं तथा रूं बीज है। वारुणी शक्ति है, इसकी महाविद्या तारा एवं इसका गुण सत्त्वगुण है। कान इसके ज्ञानेन्द्रिय तथा पैर इसके कर्मेन्द्रिय हैं। इसका स्वर मध्यम एवं तत्त्व वायु है। इसकी कला का नाम विद्या है तथा क्रीं बीज से उत्कीलन होता है। इसकी आकर्षिणी मुद्रा होती है। ऋषियों का न्यास शीर्षभाग के सहस्रार चक्र में होता है। देवता का न्यास हृदय के द्वादशार अनाहत चक्र में होता है। बीज का न्यास षडार स्वाधिष्ठान में एवं शक्ति का न्यास नाभि के दशार मणिपुर चक्र में होता है। महाविद्या का न्यास कंठ के षोडशार विशुद्धि में, गुण का न्यास मन में तथा ज्ञानेन्द्रिय का न्यास चित्त में होता है। कर्मेन्द्रिय का न्यास कर्मेन्द्रियों में होता है। स्वर का न्यास कंठ के मूल में तथा तत्त्व का न्यास चतुरार मूलाधार में होता है। कला का न्यास हथेली में तथा पैरों में उत्कीलन का न्यास होता है। मुद्रा का न्यास सभी अंगों में होता है। इस मन्त्र का रस सौम्य है।

नृसिंहवृत्तिमत्राह

श्रीसूक्तस्य चतुर्दशीमृचं द्वौ नृसिंहवर्णौ सम्पुटीकृत्य रक्षतः। आदौ रुद्रयुतो मकारश्चान्ते पूतनाशङ्करयुतो यकारः। एवं मृत्युर्निगद्यते। अनयोर्वृत्तिः पूर्वर्चो नृसिंहवर्णाभ्यां 'मृत्यु' इति सहैवोच्यते। भीषणाश्चर्ययुतो मृत्युमृत्युः। मतिभ्रंशकत्वेनाज्ञानमपि मृत्युः। मारणक्रियया प्राणापहारको

मृत्युः । क्लेशरूपः संसारो मृत्युः । एवं त्रिधामृत्यूनां मृत्युर्यस्स मृत्युमृत्युः ।
मृत्युचक्रात्त्रायते मोक्षं ददाति मृत्युमृत्युः । शिवङ्करत्वेन मृत्युमृत्युः ।
सार्वकालिकीं स्वाभाविकीं मृत्योर्मारणशक्तिं धत्ते मृत्युमृत्युः ।
अस्याधिष्ठातारौ श्वङ्गतनुर्मत्स्यो वा लोकनाथश्च ।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - श्रीसूक्त की चौदहवीं ऋचा को दो नृसिंहवर्ण सम्पुटित करके रक्षा करते हैं। प्रारम्भ में रुद्र (ऋ) से युक्त मकार और अन्त में पूतना (त) एवं शंकर (उ) से युक्त यकार। इस प्रकार 'मृत्यु' शब्द बनता है। इन दोनों की वृत्ति पिछली ऋचा के नृसिंहवर्ण 'मृत्यु' के साथ जोड़कर कही जाती है। भीषण आश्चर्य से युक्त मृत्युमृत्यु है। मति को भ्रष्ट करने से अज्ञान मृत्यु है। मारने एवं प्राण का हरण करने वाला मृत्यु है। कष्टदायी संसार भी मृत्यु है। ऐसे तीनों प्रकार की मृत्यु का भी जो मृत्यु है वह मृत्युमृत्यु है। मृत्युचक्र से मोक्ष देता है, वह मृत्युमृत्यु है। कल्याण करने से मृत्युमृत्यु है। सभी कालों में स्वभाव से ही मृत्यु की मारण शक्ति (मृत्यु को मारने वाली अथवा मृत्यु से मारने वाली शक्ति) को धारण करने वाला मृत्युमृत्यु है। इसके अधिष्ठाता श्वङ्गतनु अथवा मत्स्य एवं लोकनाथ नामक अवतार होते हैं।

॥इति सुवर्णाधिकारः ॥

--*

॥अथ पुरुषाधिकारः ॥

तां म॒ आव॑ह॒ जात॑वेदो ल॒क्ष्मीमन॑पगा॒मिनी॑म्।
यस्या॑ हिर॑ण्यं॒ प्रभू॑तं॒ गावो॑ दा॒स्योऽश्वा॑न्वि॒न्देय॑ं पुरु॑षान॒हम् ॥ १५॥

शङ्करभाष्यम्

लोकवृत्तिमत्राह

अत्र द्वितीयाया ऋचो भावपोषणमस्ति।
(यहां पर दूसरी ऋचा के ही भाव को पुनः पुष्ट किया गया है।)

अभावमत्राह

सिद्धयोगिन्या पद्मिनीदेव्या निग्रहाय मन्त्रस्यास्य दिव्यवृत्तिर्न प्रकाशिता।
न केवलं निग्रहायापित्विन्द्रादिभ्योऽपि पुरा श्रिया नोक्ता।
निग्रहो नैव जानाति न जानन्ति सुरेश्वराः।
ऋषयोऽपि न जानन्ति शेषाणां का कथा भवेत् ?
दिव्यवृत्तेरभावात्कूटवृत्तेरभावस्तस्मादप्रकाशिता।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - सिद्धयोगिनी पद्मिनी देवी के द्वारा निग्रहाचार्य के लिए इस मन्त्र की दिव्यवृत्ति प्रकाशित नहीं की गयी है। केवल निग्रहाचार्य के साथ ही ऐसा नहीं है, पूर्वकाल में इन्द्र आदि के लिए भी लक्ष्मी के द्वारा इसे नहीं कहा गया है। इसे निग्रहाचार्य नहीं जानते हैं, बड़े बड़े देवता नहीं जानते हैं, ऋषिगण भी नहीं जानते हैं, फिर शेषजनों की क्या बात करें ! दिव्यवृत्ति के अभाव में कूटवृत्ति का भी अभाव है, इसीलिए उसका भी वर्णन नहीं किया गया है।

श्रीनिग्रहाचार्यकृत-शङ्करभाष्य

तत्त्ववृत्तिमत्राह

मन्त्रस्यास्य ब्रह्मर्षिः, सर्वशक्तिर्देवता, ञ्रामिति बीजम्, धनदा शक्तिः, मातङ्गी महाविद्या, रजोगुणः, त्वग्ज्ञानेन्द्रियम्, पादौ कर्मेन्द्रिये, मृदुस्वरः, आकाशतत्त्वम्, पराशान्तिः कला, श्रीमित्युत्कीलनम्, सम्पुटमुद्रा भवति। ऋषेर्न्यासस्सहस्रारे शिरसि, देवतान्यासो द्वादशारे हृदि, बीजन्यासः षडारे स्वाधिष्ठाने, शक्तिन्यासो दशारे नाभौ, विद्यान्यासः षोडशारे कण्ठे, गुणन्यासो मनसि, ज्ञानेन्द्रियन्यासश्चेतसि, कर्मेन्द्रियन्यासः कर्मेन्द्रियेषु, स्वरन्यासः कण्ठमूले, तत्त्वन्यासश्चतुरारे मूलाधारे, कलान्यासः करतले, उत्कीलनन्यासः पादयोर्मुद्रान्यासस्तु सर्वाङ्गे भवत्यस्य मन्त्रस्य स्तवनरसो भवति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - श्रीसूक्त की पन्द्रहवीं ऋचा के ऋषि ब्रह्मा हैं। सर्वशक्ति देवता हैं तथा ञ्रां बीज है। धनदा शक्ति है, इसकी महाविद्या मातङ्गी एवं इसका गुण रजोगुण है। त्वचा इसकी ज्ञानेन्द्रिय तथा कान इसके कर्मेन्द्रिय हैं। इसका स्वर मृदु एवं तत्त्व आकाश है। इसकी कला का नाम पराशान्ति है तथा श्रीं बीज से उत्कीलन होता है। इसकी सम्पुटमुद्रा होती है। ऋषियों का न्यास शीर्षभाग के सहस्रार चक्र में होता है।

देवता का न्यास हृदय के द्वादशार अनाहत चक्र में होता है। बीज का न्यास षडार स्वाधिष्ठान में एवं शक्ति का न्यास नाभि के दशार मणिपुर चक्र में होता है। महाविद्या का न्यास कंठ के षोडशार विशुद्धि में, गुण का न्यास मन में तथा ज्ञानेन्द्रिय का न्यास चित्त में होता है। कर्मेन्द्रिय का न्यास कर्मेन्द्रियों में होता है। स्वर का न्यास कंठ के मूल में तथा तत्त्व का न्यास चतुरार मूलाधार में होता है। कला का न्यास हथेली में तथा पैरों में उत्कीलन का न्यास होता है। मुद्रा का न्यास सभी अंगों में होता है। इस मन्त्र का रस स्तवन है।

नृसिंहवृत्तिमत्राह

श्रीसूक्तस्य पञ्चदशीमृचं द्वौ नृसिंहवर्णौ सम्पुटीकृत्य रक्षतः। आदौ नकारश्चान्ते दीर्घमकारः। एवं 'नमा' निगद्यते। अनयोर्वृत्तिमग्रे षोडश्यामृचि व्याख्यास्यामः।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - श्रीसूक्त की पन्द्रहवीं ऋचा को दो नृसिंहवर्ण सम्पुटित करके रक्षा करते हैं। प्रारम्भ में नकार और दीर्घ मकार (मा)। इस प्रकार 'नमा' शब्द बनता है। इन दोनों की वृत्ति आगे सोलहवीं ऋचा में कहेंगे।

॥इति पुरुषाधिकारः॥

--*

॥अथ श्रीकामाधिकारः ॥

यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम्।
(सूक्तं) श्रियः पञ्चदशर्चं च श्रीकामः सततं जपेत् ॥ १६ ॥

शङ्करभाष्यम्

लोकवृत्तिमत्राह

सूक्तस्यात्र फलश्रुतिः। त्रिविधां पवित्रतामाश्रित्यैकाग्रमनसा सूक्तमन्त्रैर्बिल्वफलैः पङ्कजबीजैर्वा पायसेन होमं कृत्वाभीष्टसमृद्धिमश्नुते।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - यहां सूक्त की फलश्रुति बतायी गयी है। तीनों प्रकार की (कायिक, वाचिक, मानसिक) पवित्रता का आश्रय लेकर एकाग्रचित्त होकर सूक्त के मन्त्रों से बेल के फल कमल के बीजों अथवा खीर से आहुति देकर व्यक्ति अभीष्ट सम्पन्नता का उपभोग करता है।

अभावमत्राह

फलश्रुतिवाचकत्वेन मन्त्रस्यास्य दिव्यवृत्तिर्न भवति।
दिव्यवृत्तेरभावात्कूटवृत्तेरभावस्तस्मादप्रकाशिता।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - फलश्रुति का वाचक होने से इस मन्त्र की दिव्यवृत्ति नहीं होती है। दिव्यवृत्ति के अभाव में कूटवृत्ति का भी अभाव है, इसीलिए उसका वर्णन नहीं किया गया है।

तत्त्ववृत्तिमत्राह

मन्त्रस्यास्य ब्रह्मर्षिः, महासरस्वती देवता, प्रूमिति बीजम्, सिद्धिदा शक्तिः, कमला महाविद्या, सत्त्वगुणः, नासिका ज्ञानेन्द्रियम्, पादौ

कर्मेन्द्रिये, मृदुस्वरः, जलतत्त्वम्, शान्तिः कला, ह्रीमित्युत्कीलनम्, सम्पुटमुद्रा भवति। ऋषेर्न्यासस्सहस्रारे शिरसि, देवतान्यासो द्वादशारे हृदि, बीजन्यासः षडारे स्वाधिष्ठाने, शक्तिन्यासो दशारे नाभौ, विद्यान्यासः षोडशारे कण्ठे, गुणन्यासो मनसि, ज्ञानेन्द्रियन्यासश्चेतसि, कर्मेन्द्रियन्यासः कर्मेन्द्रियेषु, स्वरन्यासः कण्ठमूले, तत्त्वन्यासश्चतुरारे मूलाधारे, कलान्यासः करतले, उत्कीलनन्यासः पादयोर्मुद्रान्यासस्तु सर्वाङ्गे भवत्यस्य मन्त्रस्य स्तवनरसो भवति।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - श्रीसूक्त की सोलहवीं ऋचा के ऋषि ब्रह्मा हैं। महासरस्वती देवता हैं तथा प्रूं बीज है। सिद्धिदा शक्ति है, इसकी महाविद्या कमला एवं इसका गुण सत्त्वगुण है। नासिका इसकी ज्ञानेन्द्रिय तथा पैर इसके कर्मेन्द्रिय हैं। इसका स्वर मृदु एवं तत्त्व जल है। इसकी कला का नाम शान्ति है तथा ह्रीं बीज से उत्कीलन होता है। इसकी सम्पुटमुद्रा होती है। ऋषियों का न्यास शीर्षभाग के सहस्रार चक्र में होता है। देवता का न्यास हृदय के द्वादशार अनाहत चक्र में होता है। बीज का न्यास षडार स्वाधिष्ठान में एवं शक्ति का न्यास नाभि के दशार मणिपुर चक्र में होता है। महाविद्या का न्यास कंठ के षोडशार विशुद्धि में, गुण का न्यास मन में तथा ज्ञानेन्द्रिय का न्यास चित्त में होता है। कर्मेन्द्रिय का न्यास कर्मेन्द्रियों में होता है। स्वर का न्यास कंठ के मूल में तथा तत्त्व का न्यास चतुरार मूलाधार में होता है। कला का न्यास हथेली में तथा पैरों में उत्कीलन का न्यास होता है। मुद्रा का न्यास सभी अंगों में होता है। इस मन्त्र का रस स्तवन है।

नृसिंहवृत्तिमत्राह

श्रीसूक्तस्य षोडशीमृचं द्वौ नृसिंहवर्णौ सम्पुटीकृत्य रक्षतः। आदौ क्लेशितो वायुश्चान्ते व्योमबीजश्च। एवं 'म्यहम्' इति निगद्यते।

अनयोर्वृत्तिं पूर्वर्चो नृसिंहवर्णाभ्यां 'नमा' इति सहैव वक्ष्ये। पदेऽत्र नमामि चाहम्। सूक्तरक्षायां संयुक्ते व्याख्यायां भिन्ने भवतः। उग्रव्रतिनमुग्रव्रतिनार्चितं मलास्पृष्टञ्चिद्धनं पाशभेदिनं शिवाख्यं केशवाख्यं महान्तं पुरुषोत्तमं नमाम्यहम्। साङ्ख्यानुसारमवर्णाद्धपर्यन्तमहङ्कारः सिद्धः। हमिति परिवर्तनं हमिति संहारस्तस्याभावोऽहमिति। देहप्राणविहीनो जीवोऽहमिति पदस्थो भवति। यथा नद्यः सागरे प्रह्वीभवन्ति तथा स्वात्मानमज्ञं दीनं मन्यमानस्याहंपदस्थस्य जीवस्य ब्रह्मणि लयो नमामीति पदेन प्रोच्यते।

श्रीप्रसाद-भाषानुवाद - श्रीसूक्त की सोलहवीं ऋचा को दो नृसिंहवर्ण सम्पुटित करके रक्षा करते हैं। प्रारम्भ में क्लेश (म) से युक्त वायु (य) और अन्त में आकाशबीज (हं)। इस प्रकार 'म्यहम्' शब्द बनता है। इन दोनों की वृत्ति पिछली ऋचा के नृसिंहवर्ण 'नमा' के साथ जोड़कर कहता हूँ। यहां दो पद हैं - नमामि एवं अहम्। सूक्त की रक्षा में ये शृङ्खलाबद्ध होकर संयुक्त रहते हैं किन्तु व्याख्या में भिन्न करके बताए जाते हैं। उग्रव्रत का पालन करने वाले, उग्रव्रत वालों के द्वारा पूजित, मलों से अस्पृष्ट, चिद्रूप, अष्टपाशों का नाम करने वाले, शिव और विष्णु कहाने वाले महान् पुरुषोत्तम को मैं प्रणाम करता हूँ, यह नमाम्यहम् का भाव है। सांख्ययोग के अनुसार अकार से हकार तक के वर्ण में अहङ्कार की सिद्धि है। परिवर्तन एवं संहार को हं कहते हैं, उसका अभाव ही अहं है। देह और प्राण से हीन जीव अहं पद में स्थित हो जाता है। जैसे नदियां सागर में लीन हो जाती हैं, वैसे ही स्वयं को अज्ञानी एवं असमर्थ मानते हुए अहंपद में स्थित जीव का ब्रह्म में लय होना 'नमामि' पद से कहा जाता है।

॥इति श्रीकामाधिकारः॥

--*

॥अथ संहाराधिकारः ॥

निग्रह उवाच

नृसिंहवृत्तिमध्यानां वर्णानामस्त्रयोजनम्।
पदानां प्रातिलोम्येन वैकुण्ठास्त्रमुदीरितम् ॥०१॥
नारायणास्त्रं वर्णानां प्रतिलोमपुरस्सरम्।
वीरहीनो ज्वलद्धीनो महाविष्णोर्विलोपकः ॥०२॥
सर्वतोमुखनिर्मुक्तः प्रख्यातः कालपावकः।
चानुलोम्यप्रयोगेण तथा शान्तिर्भवेन्नृणाम् ॥०३॥

निग्रहाचार्य ने कहा - नृसिंहवृत्ति में आये वर्णों का अस्त्रात्मक प्रयोग कहता हूँ। उनके पद को विपरीत कर देने को वैकुण्ठास्त्र कहते हैं। वर्णों के विपरीत क्रम से नारायणास्त्र बनता है। वीर, ज्वलन्त, महाविष्णु एवं सर्वतोमुख से हीन (प्रतिलोम) मन्त्र को कालपावकास्त्र कहा गया है। इन्हें अनुलोम कर देने से लोगों को इन अस्त्रों की शान्ति हो जाती है।

तावदेव न सूक्तस्य माहात्म्यमर्थ एव वा।
यावज्जानामि यत्नेन तावद्वः कथितं मया ॥०४॥
यथा खे खेचराः सन्ति यथा सिन्धौ पयश्चराः।
तथागण्यश्च सूक्तार्थो जाह्नवीबालुका यथा ॥०५॥

श्रीसूक्त का माहात्म्य और अर्थ इतना ही है, ऐसा नहीं समझना चाहिए। मैं जितना जानता हूँ, तुमलोगों के लिये उतना ही मेरे द्वारा प्रयत्नपूर्वक कहा गया है। जैसे आकाश में ग्रह-नक्षत्र तथा समुद्र में जलचरों की गणना करना सम्भव

नहीं है, वैसे ही गङ्गा में स्थित बालुका के समान सूक्त के अर्थ की गणना सम्भव नहीं है।

लक्ष्मीर्वेदविदामिष्टा श्रीरेवागमपूजिता।
श्रियस्तोषे जगत्तोषो रोषे वा विश्वकोपनम् ॥०६॥
सूक्तार्थो यो मया लब्धः पद्मिनीजपतेजसा।
स सर्वस्तु मया प्रोक्तो नानावृत्तिसमायुतः॥०७॥

लक्ष्मी ही वेदवेत्ताओं की इष्टा हैं, श्रीदेवी ही तन्त्रमत के द्वारा पूजित होती हैं। उसके सन्तुष्ट होने पर संसार तुष्ट हो जाता है और उसके क्रुद्ध होने पर विश्व भी क्रुद्ध हो जाता है। पद्मिनी देवी के मन्त्रजप के तेज से मेरे द्वारा जो सूक्त का अर्थ प्राप्त किया गया है, वह ऐसा और इतना ही है, जो अनेकों वृत्तियों से संयुक्त है।

॥इति संहाराधिकारः॥

--*

॥ इत्यृग्वेदखिले श्रीसूक्ते निग्रहाचार्येण श्रीभागवतानंदगुरुणा कृतं शङ्करभाष्यं सम्पूर्णम्॥

॥ इस प्रकार से ऋग्वेदखिल में कहे गये श्रीसूक्त पर निग्रहाचार्य श्रीभागवतानंद गुरु के द्वारा निर्मित शङ्करभाष्य सम्पूर्ण हुआ॥

*_*_*